235

हिन्दी साहित्य की रूपरेखा

[हिन्दी साहित्यका संक्षिप्त इतिहास]

कृष्णदेव प्रसाद गौड़

प्रकाशक—
विद्यामंदिर
चौक-कानपुर

प्रथम संस्करण ११०० मूल्य १।।)

मुद्रक—
रामनिधि त्रिपाठी
मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी

प्रवेशिका

इस पुस्तकमें अति संक्षेपमें हिन्दी साहित्यकी झाँकी सरल भाषामें उपस्थित की गयी है। हिन्दीका प्रारम्भिक ज्ञान रखनेवाले हिंदी-प्रेमियों तथा छात्रोंके लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी।

इसमें परिचयात्मक ढङ्गसे संक्षिप्त रूपमें मात्र प्रमुख साहित्य, साहित्यकारों एवं युगकी प्रवृत्तियोंका वर्णन निम्नलिखित काल-विभाजनके आधारपर किया गया है :—

१. आदि-काल (सं० १०५०—१३७५)
२. भक्ति-काल (सं० १३७५—१७००)
३. रीति-काल (सं० १७००—१९००)
४. आधुनिक-काल (सं० १९००—२०००)

अब इन काल-क्रमोंके अनुसार विभिन्न युगोंके साहित्यका वर्णन किया जायेगा।

—लेखक



हिन्दी साहित्य का आदि युग

[सं० १०७५–सं० १३७५ वि०]

इस युगके साहित्यके संवंधमें हमें कुछ ऐतिहासिक स्थिति भी अपने देशकी देखनी होगी। इस युगका इतिहास लड़ाई-झगड़ेका इतिहास है। हर्षवर्द्धनकी मृत्युके पश्चात् भारतमें एक शासन नहीं रह गया। इधर-उधर अनेक छोटे छोटे राज्य बन गये थे। उत्तर भारतमें राजपूतोंके छोटे-छोटे राज्य थे। जो एक दूसरेसे चढ़ा-ऊपरी करते थे और जिनकी तलवारें सदा म्यानसे बाहर निकली रहती थीं। उधर मुसलमान भी अपना झंडा फहराते इसलाम धर्मके उत्साहमें पैगम्बरका सन्देश सुनाने लगे थे। यद्यपि राजपूतोंमें आपसमें ऐक्य न था तथापि अपनी रक्षाके निमित्त उन्हें तलवार तो उठानी ही थी। धार्मिक क्षेत्रमें इस समय बौद्ध धर्मका ह्रास हो चुका था। मुसलमानोंने भी इन्हें घोर मूर्ति पूजक समझकर इनका विध्वंस किया फिर शङ्करका तेज पूर्ण व्यक्तित्व और उनका विचक्षण ज्ञान बौद्ध धर्मका सफाया करनेके लिये अलगसे आया। हिन्दू धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा होने लगी। राजपूत प्रबल हो चले थे। यह युग ही क्षात्र युग था। ब्राह्मण पूज्य थे, मान्य थे, उनका समादर था किन्तु ज्ञान और दर्शनका प्रसार करनेका उनका समय नहीं था। क्षत्रियोंकी महिलाएँ भी देश भक्ति और वीरताके भावोंसे ओत-प्रोत थीं। त्याग और बलिदान उनके जीवनका नित्यका खेल था। राजपूतोंमें वीरता और बलिदानके साथ सबसे बड़ा दोष था उनकी आपस की स्पर्धा और इस कारण परस्पर भेद-भाव उनमें बढ़ा।

इन सबका प्रभाव साहित्य पर कैसे न पड़ता ? अपभ्रंश भाषाके बाद इस समय हिन्दीकी रचना आरम्भ हो चली थी। भाषाका यह शैशव काल था। दूसरे सुख शांति थी नहीं। हलचल, धर्म पर आघात और आक्रमणका वातावरण था। तलवारोंकी खनखनाहट और तीरोंकी बौछारमें वंशीकी मधुर तान कहाँसे सुनाई देती। इसलिये इस युगका साहित्य वीर साहित्य है। इसलिये इसे साहित्यके इतिहासकार वीर गाथा काल कहते हैं। और रसोंकी भी रचनाएँ इस युगमें हुई होंगी किन्तु वातावरणके अनुसार वीर रसका ही प्राधान्य रहा है।

इस युगका साहित्य दो रूपोंमें मिलता है। एक प्रबन्ध काव्यके रूपमें दूसरा वीर गीतोंमें जिन्हें अँग्रेजीमें 'बैलड' कहते हैं। वीर काव्यके ग्रंथोंको 'रासो' कहते हैं। कुछ लोगोंका मत है कि रासो शब्द 'रहस्य'से निकला है। किंतु अधिक उपयुक्त यह जान पड़ता है कि 'रसायण' शब्दसे बिगड़ कर रासो हो गया है। रसायण 'काव्य'के अर्थमें भी समझा जाता है। इसके अतिरिक्त मुक्तकके रूपमें भी बहुतसे फुटकल छन्द मिलते हैं।

भाषा तो इन रचनाओंकी हिंदी ही है यद्यपि स्थान-स्थान पर पुरानी हिंदी तथा अपभ्रंशका प्रयोग मिलता है। स्वभावतः यह प्रयोग ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं कम होता जाता है। कहीं-कहीं संस्कृत और प्राकृतकी खिचड़ी भी जान पड़ती है। व्याकरण और भाषा शास्त्रके नियमोंकी स्वतंत्रता पूर्वक अवहेलनाकी गयी है यहाँ तक कि किसी-किसी पद्यका अर्थ निकालना भी कठिन हो गया है। इस कालकी रचनाओंमें दोहा छंदकी प्रधानता है। यद्यपि पृथ्वीराज रासोमें बहुतसे हिंदी तथा संस्कृत-छंदोंका प्रयोग है किन्तु पुरानी हिन्दीमें दोहाकी ही प्रधानता रही है।

हिन्दीमें पहली पुस्तक जो प्रवंध रूपमें मिलती है वह दलपति विजय का खुमान रासो है। इस समय जो खुमान रासोकी प्रति उपलब्ध है उसमें राणा प्रतापसिंह तकका वर्णन मिलता है इससे निश्चय ही ज्ञात होता है कि पीछेके किसी कविने इसमें बढ़ाया है। छान बीनसे इतना जान पड़ता है कि यह काव्य दूसरे खुम्माणके समय बना होगा जिसका राजत्व काल वि० सं० ८७० से ९०० तक था।

इसके बादकी जो पुस्तक मिलती है वह विसलदेव रासो है। यह नरपति नाल्हकी रचना है। यह कवि चतुर्थ विग्रह राज उपनाम विसलदेवका समकालीन था। यह ग्रंथ संवत् १२१२ वि०का लिखा है। इस रासोमें युद्धों का वर्णन नहीं है। इसमें चतुर्थ विग्रहराज तथा उनकी नवविवाहिता पत्नी राजमतीके प्रेम तथा वियोगकी कथा है। इस कथामें भी प्रक्षिप्त अंश आ गये हैं। विसलदेव रासो की विशेषता है कि प्रेम कथा होने पर भी वीर गीत कहे जानेका गौरव उसे प्राप्त है।

इसकी भाषा राजस्थानी है जिसमें ब्रज और खड़ी बोलीका प्राचीन रूप मिलानेकी प्रवृत्ति पायी जाती है। यह पुस्तक प्रबन्ध-काव्य नहीं है। गीतोंकी है। इसलिये गाते-गाते शब्दोंसे हेर-फेर भी बहुत हुए हैं।

चन्दबरदाई--[सं० १२२५-१२४९]

समयके अनुसार तीसरी और प्रबन्ध-काव्यकी दृष्टिसे दूसरी पुस्तक कविचंद्र रचित पृथ्वीराज रासो है। इस ग्रंथके सम्बन्धमें विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है। कुछ लोगोंका कहना है कि चन्द पृथ्वी-राजका समकालीन था ही नहीं। यह ग्रंथ पृथ्वीराजकी मृत्युके पश्चात् बना है। ग्रंथ इस समय जिस रूपमें मिलता है, वह विशाल-

काय है। कुल छप्पन अध्याय या 'समय' हैं। उन्हें पढ़नेसे जान पड़ता है कि न तो यह एक कविकी रचनाएँ हैं न एक समयकी लिखी हैं। इसमें प्राचीन कालसे लेकर आज कल तकके हिन्दीके छन्द मिलते हैं। इससे क्षेपक तो इसमें बहुत हैं। कुछ लोगोंका कथन है कि चंद कवि पृथ्वीराजके समयमें अवश्य था। उनका दरबारी कवि था। थोड़ा-सा अंश उसने लिखा, बाकी अंश उसके पुत्र जल्हनने पूरा किया।

पुस्तक देखनेसे इतना तो जान ही पड़ता है कि 'घटनाएँ एक दूसरे से असंबद्ध हैं। कथानक शिथिल और अनियंत्रित हैं। महाकाव्योंकी भाँति न तो घटनाओंका किसी एक आदर्शमें संक्रमण होता है और न अनेक कथानकोंकी एकरूपता ही प्रतिष्ठित होती है। ऐसी अवस्थामें पृथ्वीराज रासोको महाकाव्य न कह कर विशालकाय वीरकाव्य कहना ही संगत होगा'। [१]

पृथ्वीराज रासोके संबंधमें जो कुछ खोज अभी तक हुई है उससे कोई ठीक मत नहीं निश्चय हो सका है। केवल यह कहा जा सकता है कि इसमें कई कवियोंकी रचनाएं हैं। चन्द कोई कवि ही नहीं था ऐसा कहना उचित न होगा।

इस ग्रंथमें पृथ्वीराजका वीर चरित्र अंकित किया गया है। क्षत्रियोंकी उत्पत्ति तथा उनके राज्य स्थापनका भी वर्णन है। पृथ्वीराज और जयचन्दकी लड़ाई, पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरीके युद्ध, पृथ्वीराजका पकड़ा जाना और पीछे चन्द का जाना और शब्द वेधी बाणसे मुहम्मद गोरीकी मृत्यु सब विस्तारसे लिखे गये हैं। साथ ही पृथ्वीराज और संयुक्ताका प्रेम वर्णन भी है। वीर रसमें शृंगार रसका भी अच्छा सम्मिश्रण है। घटनाएँ बहुत-सी कल्पित

१ डाक्टर श्यामसुन्दरदास।

हैं, बहुत-सी ऐतिहासिक भित्ति पर भी हैं। वर्णन मार्मिक गुणोंसे पूर्ण हैं।

इतना तो माना ही जा सकता है कि वीरगाथा कालकी यह सबसे श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण रचना है। उस समयका सजीव चित्र कविने खींचा है। यद्यपि भाषा पुरानी और दुरूह है जिससे पूरा आनन्द इसका उठाया नहीं जा सकता, फिर भी जितना अंश सुबोध है वह प्रभावोत्पादक है, काव्य गुणों से अलंकृत है और साहित्यिक श्रेणीमें आने योग्य है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :

हिंदुवान थान उत्तम सुदेश, तहं उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेश
संभरि नरेस चहुआन थान, प्रथिराज तहाँ राजंत भान
संभरि नरेश सोमेस पूत देवत्तरूप अवतार धूत
जिहि पकरिसाह साहाब लीन, तिहुँ बेर करिय पानीप हीन
सिंगिनि सुसद्द गुनि चढ़ि जंजीर, चुक्कइ न सबद बेधंत तीर

× × ×

बज्जिय घोर निसान रान चौहान चहौं दिस
सकलसूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तिस
उठिराज प्रथिराज बाग मनो लग्ग वीर नर
कढ़त तेग मन बेग लगत मनो बीजु झट्ट घट
थकि रहे सूर कौतिग गगन, रंगन, मगन भइ शोन[1] धर
हदि[2] हरपि बीर जग्गे हुलसिं, हुरेउ[3] रंग नवरत्त वर[4]

× × ×

---

१ शोणित। २ हृदय। ३ स्फुरित हुआ। ४ रक्त।

जैसे चन्दने पृथ्वीराजका यशोगान किया है उसी प्रकार भट्ट केदारने 'जयचंद प्रकाश'में जयचंदकी कीर्तिका वर्णन किया है। मधुकर कविने जयमयंक जस चन्द्रिका लिखा किन्तु दोनों ग्रंथ मिलते नहीं हैं। इसी प्रकार शार्ङ्गधरके हम्मीर काव्य तथा नल्हसिंहके विजयपाल रासोका उल्लेख भी मिलता है। इससे इतना पता चलता है कि वीरगाथा काव्य लिखनेकी परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही।

जगनिक [सं० १२३०]

ऊपर कहा गया है कि वीरगाथा कालमें प्रवन्ध काव्योंके अतिरिक्त गीतोंके ढंग पर भी वहुत-सी रचनाएँ हुईं। इनमें सबसे विख्यात आल्हा खंड है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह पृथ्वीराजरासोका ही एक खड था। किन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता। इसमें पृथ्वीराजकी कीर्ति नहीं गायी गयी है न उनके चरित्रकी प्रधानता है। ऐसा कहा जाता है कि कालिंजरके राजा परमालके यहां जगनिक नामके एक भाट रहते थे। उन्होंने महोवेके दो प्रसिद्ध वीर आल्हा और ऊदलके वीर चरित्रोंका वर्णन काव्यके रूपमें लिखा। यह गीत जनताको बहुत प्रिय हुए और आजकल भी उत्तर भारतके गांवोंमें विशेषतः बरसातकी संध्यामें ढोल पर बड़े उत्साहके साथ गाये जाते हैं। यद्यपि इस कविताका रूप साहित्यिक नहीं है फिर भी इसकी लोकप्रियतामें किसीके दो मत हो नहीं सकते। इसमें जो युद्धोंका वर्णन हुआ है वह एक ही ढंगका है। भौगोलिक अशुद्धियां भी हैं किन्तु साधारण जनताको बहुत ही लोकप्रिय हैं। उस समयके और ग्रंथोंके समान इसका मूल रूप अब नहीं रहा। गानेकी वस्तु थी लोगोंने मनमाना बढ़ाया। इसलिये आज जो आल्हा गाया जाता है वह जगनिककी मूल कृति नहीं है।

आल्हाके छंदोंमें एक प्रवाह है। साहित्यिक नियमोंसे न जकड़े जानेसे संभवत: ऐसा हो। 'वीर' छंदका प्रयोग इसमें किया गया है वह विषयके बहुत उपयुक्त है। इसमें प्राकृतिक दृश्योंका चित्रण नहीं है न मानसिक वृत्तियोंका विश्लेषण है। इसमें एक स्वच्छंद प्रवाह है जिसने जनसाधारणके मनको आकर्षित कर लिया है। इसमें ओज अवश्य है और इसके सुनने से उत्साह तथा स्फूर्ति पैदा होती है।

धीरे-धीरे मुसलमानोंका राज्य भारतवर्षमें दृढ़ होता गया और केवल आक्रमणकारी न होकर वे शासक बन गये। देशी नरपति भी हताश हो गये और उनकी शक्तियां क्षीण हो गयीं। यद्यपि लड़ाई झगड़े बन्द नहीं हो गये फिर भी उनमें वह सरगर्मी नहीं रह गयी जो पहले थी। विक्रमकी चौदहवीं शतीके अन्तिम चरण तक बहुत कुछ व्यवस्था देशमें हो गयी और वीरगाथा काल यहीं समाप्त भी हो जाता है। जब वीरोंकी तलवार कुंठित हो गयी तब इन्हें उत्तेजना कैसे मिले और कौन दे। जो चारण या बन्दीजन थे वे राजाओं या सुलतानोंकी और मनोवृत्तियोंको जाग्रत करते थे। उनकी वीरताका वर्णन भी होता था तो महलकी चारदीवारीके भीतर ही।

अभी तक कविता जो होती थी वह परंपरागत शैली पर। भाषामें भी पुरानी शैलीकी नकलकी जाती थी। इन्हीं दिनों वीर गाथा कालके अतिरिक्त बोल-चालकी भाषामें रचनाओंके भी उदाहरण मिलते हैं। इसमें दो मुख्य रचयिताओंका पता मिलता है। पूरबमें मैथिल कोकिल विद्यापतिका और पश्चिममें खुसरो का।

एक और वीर गाथाका परिचय इस समयका मिलता है, हम्मीर रासोका। यद्यपि यह काव्य आजकल नहीं मिलता। रण थमोरके राजा हम्मीर देवने अनेक बार मुसलमानोंका सामना किया और विपक्षियोंको अनेक बार हराया। सं० १३५७ में यह अलाउद्दीनकी चढ़ाईमें मारे गये। कहते हैं कि हम्मीर रासोकी रचना शार्ङ्गधर

ने की थी। हमीरके सम्बन्धमें विख्यात् है 'तिरिया, तेल, हम्मीर ह
चढ़े न दूजो बार'। स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्लका कहना है कि
'प्राकृत पिंगल सूत्र'में हम्मीरके सम्बन्धकी अनेक रचनाएँ शार्ङ्गध
की हैं।

खुसरोकी रचना संवत् १३४० के आस-पासकी है। इनकी
मृत्यु सम्वत् १३८१ में हुई थी। इनके जीवन-कालमें दिल्ली
सिंहासन पर ११ बादशाह बैठे जिनमें सातकी सेवा उन्होंने स्वयं
थी। यह बड़े ही मिलनसार सहृदय और मनोरंजन-प्रिय व्यक्ति थे
फारसी तथा अरबीके ऊँचे दर्जेके विद्वान् थे। उनकी अधिकां
रचनाएँ फारसीमें हैं किन्तु उन्होंने उस समयकी देशी बोलचा
की भाषामें भी कविता लिखी। इससे पता चलता है कि उस सम
पश्चिमी प्रदेशोंकी बोली खड़ी बोली ही थी। जिसमें कहीं कह
ब्रजभाषाकी भी झलक रहती थी। उन्होंने फारसी तथा हिन्दी मिश्रि
भाषामें भी रचनाएँ की हैं। संभव है उनका प्रयास हिंदू-मुसलमा
में एकता स्थापित करनेका रहा हो। कहा जाता है कि उन्होंने फारस
और हिंदीका एक कोष भी पद्योंमें तैयार किया था। जो खाल
बारीके नामसे विख्यात है। अब कुछ लोगोंका कहना है कि खाल
बारी खुसरोकी लिखी नहीं है। किंतु इसमें संदेह नहीं कि इन्हों
हिंदीमें बहुत-सी रचनाएँ कीं। जो विशेषतः पहेलियों, और मु
रियोंके रूपमें हमारे सामने हैं। दोहे और गीत भी इन्होंने लिखे हैं
इनकी रचनाओंमें दो महत्वकी बातें हमें मिलती हैं। एक तो इ
युगके इतिहास तथा मुसलिम शासकोंकी मनोवृत्तिकी झलक ह
पाते हैं। उस समयकी स्थितिका थोड़ा परिचय हमें मिलता है
दूसरे भाषाके विकासकी मंजिलका एक पत्थर इनके जीवनकाल
पड़ता है। यद्यपि इनके नाम पर भी बहुत-सी रचनाएँ बना
लोग जोड़ते चले गये हैं, फिर भी इनकी रचनाओंका कुछ न कु

स्पष्ट पता मिल जाता है। देशकी बोलचालकी भाषामें इन्होंने रचना की। खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप इनकी रचनाओंमें पाया जाता है। यहांकी भाषामें कुछ विदेशी शब्द मिलने लगे थे इसका आभास इनकी रचनाओंसे मिलता है। इनकी भाषा उस समय की पश्चिमकी बोलचालकी जनसाधारणकी भाषा है जो खड़ी बोली है। उसमें ब्रजभाषाका कहीं-कहीं पुट है। नीचे लिखे उदाहरणोंसे खुसरोकी भाषाका कुछ परिचय मिलेगा। उनकी रचनाओंसे यह स्पष्ट है कि उनका मत कुछ गंभीर साहित्य सर्जनका नहीं था। इसका एक अभिप्राय यह भी हो सकता है कि मुसलिम शासकोंको यहांकी जनसाधारणकी भाषासे परिचय कराना चाहते रहे हों। इसके लिये आवश्यक था कि चलती भाषाका ही प्रयोग किया जाय।

एक थाल मोतीसे भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरै, मोती उससे एक न गिरै॥—(आकाश)

× × × ×

एक नारने अचरज किया, साँप मार पिंजरेमें दिया।
जों जों साँप तालको खाए, सुखे ताल साँप मर जाए॥-(दियाबत्ती)

× × × ×

विद्यापति

दूसरे कवि जो इस युगमें हैं और जिन्होंने अपने प्रदेशकी भाषामें रचनाकी और वीरगाथा कालकी परंपरा पर नहीं चले वह हैं मधुर गीतोंके गायक विद्यापति जो अपनी मीठी रचनाके कारण कोकिल कहलाये। यद्यपि समयका प्रभाव उन पर भी कैसे न पड़ता।

अपभ्रंशमें दो रचनाएँ उन्होंने भी कीं। कीर्तिलता तथा कीर्तिपताका। कीर्तिलता पुस्तक अब संपादित होकर छप गयी है। उसमें तिरहुत राजा कीर्तिसिंहकी कीर्तिका वर्णन है। इस पुस्तकमें बीच-बीच देश भाषाके पद्य भी हैं और अपभ्रंशमें दोहे, चौपाई, छप्पय आदि लिखे गये हैं। यह अपभ्रंश पूर्वी है और देश भाषाकी ओर झुकी हुई।

किन्तु इनकी ख्याति विशेषतः इनके गीतोंके बल पर है। विद्यापति संवत् १४६० में तिरहुतके राजा शिवसिंहके यहाँ वर्तमान थे उनके सम्बन्धमें भी अनेक रचनाएँ इनकी मिलती हैं। इन्होंने उस समयकी मैथिली भाषाका अपनी रचनाओंमें प्रयोग किया है। विद्यापति हिन्दीके ही कवि थे इसमें सन्देह नहीं। उनकी भाषाकी शब्दावली इस बातका प्रमाण है। मधुरता इनकी भाषाकी जान है। भोजपुरी भाषासे इनकी भाषाका साम्य है। इनकी रचनाएँ अधिकांश शृङ्गारी हैं। जयदेव कृत गीत गोविन्दका ही अनुकरण जान पड़ता है जिनके नायक माधव और नायिका राधा रानी हैं। रचनाएँ शृङ्गारकी दृष्टिसे की गयी हैं और भक्तकी दृष्टि से नहीं। कहीं-कहीं श्लीलताकी सीमाको पार कर गयी हैं। इनकी मधुरताका पता इन गीतोंसे मिलता है।

माधव कत तोर करब वड़ाइ
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहु अधिक लजाइ
जों श्री खंड[1]-सौरभ अति दुलंभ तौ पुनि काठ कठोर
जों जगदीस निसाकर तौ पुनि एकहि पच्छ इजोर
मनि समान अओर नहीं दूसर तनिक हुँ पाथरनामे
कनक कदलि छोट लज्जित मैं रहुकी कही ठामहि ठामे

१ चंदन।

तोहर सरिस एक तोह साधव मन होइछ अनुमाने
सज्जन जन सों नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने

× × × ×

इसी युगके साथ-साथ एक और धारा हमारे देशमें बहती थी जिसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा इसे हम योग धारा कह सकते हैं। बौद्ध धर्मके ह्रासके बाद बौद्ध धर्मका कुछ विकृत रूप-सा हो गया। उसमें मदिरापान, विषय भोग, हिंसा आदि सिद्धिके लिये आवश्यक समझे जाने लगे। विजयी राजा इसके प्रसारमें सहायक हुए। इसे वज्रयान कहते हैं। इसीके विरोधमें योग मार्गका प्रचार हुआ जिसमें ब्रह्मचारी रहकर अनेक प्रकारसे शरीरकी साधना की जाय। हठ योग इस मतका सबसे बड़ा आधार है। इसके मूल प्रवर्तक आसामके बाबा मत्स्येन्द्रनाथ थे जिनके शिष्य बाब गोरखनाथ ने हिंदीमें अनेक पुस्तकें लिखीं। इन्होंने गद्यमें भी पुस्तकें लिखीं जिस पर आगे विचार होगा। इनकी पुस्तकोंका जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा।

इसी संप्रदाय तथा इसीसे मिलते-जुलते और संप्रदायके साधु जनतामें इधर-उधर प्रचार करते घूमते थे। गोरखनाथ तो सिद्ध थे और भी कितने सिद्ध रहे होंगे, साथ ही बहुतसे साधु केवल इन सिद्धांतोंको लेकर कविता बना-बनाकर माँगते खाते रमते रहे। इनकी रचनाकी भाषा खड़ी बोली और ब्रज और पूरबी मिली होती थी। इनकी भाषाको सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं। जनतासे संपर्क रखना था इसलिये ऐसी भाषाका इन्होंने प्रयोग किया। आगेकी भाषाके विकास में इन साधुओंकी सधुक्कड़ी भाषाने बड़ी सहायता की।

भक्ति काल

मुसलमानोंका राज्य स्थापित होनेके पश्चात्, भारतवर्षमें जह
तक हिंदुओंका संबंध है, एक निराशा और अंधकारका युग आता है
उनके राज और उनके धर्म पर प्रहार हो चुका था। जो कुछ छोटे-मो
राज बच गये थे वे मुसलिम शासकोंके अधीन थे और उनकी कृ
पर अवलंबित थे। साधारण जनताके लिये कोई आश्रय रह नहीं ग
था। पंडित वर्ग मुसलमानोंके संपर्कमें कम आया, वह अलग रह
किसी भांति अपने अध्ययनमें लगा रहा। शासक विलासी हो च
थे, और साधारण जनता अंधकार में थी। उनका जान-माल सुरक्षि
नहीं था। यद्यपि साधारण हिंदू-मुसलमान जनताका मिलना-जुल
हो चला था और एक दूसरेको कुछ समझ भी चुके थे। हिन्दुओं
शासकोंकी कोई सहानुभूति दिखायी नहीं पड़ती थी। वे शक्तिहं
थे, बिखरे थे। कोई ऐसा था भी नहीं जो उन्हें बल प्रदान करत
ऐसी असहायावस्थामें लोग भगवानकी ही शरण लेते हैं। उ
को पुकारते हैं।

इस राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्थाके परिण
स्वरूप एक नवीन धार्मिक आंदोलन खड़ा हो गया। हिन्दुओं
निराशा और निरुत्साह की प्रतिक्रिया स्वरूप एक नयी लहर फैल
भगवान्के प्रतिपालकस्वरूपकी भावना लोगोंमें फैली। इसे वैष्
आंदोलन कहते हैं। जब मनुष्य सब ओरसे हताश हो जाता है
उसे भगवान्के अतिरिक्त और कौन सहायता दे सकता है? वह वि
विनाशक, भक्तोंका कष्ट निवारण करने वाले और दुष्टोंका द
करनेवाले थे।

भक्ति आन्दोलन यों तो कोई नया आन्दोलन नहीं था। वैदिक कालसे ही किसी न किसी रूपमें इसकी दार्शनिक नींव पड़ चुकी थी। गीतामें स्वयं भक्ति योग पर एक अध्याय है। हिन्दू दार्शनिकोंने समय-समय पर इसके तत्वोंका विवेचन किया। किन्तु इस समय कई कारणोंसे इस आन्दोलनको उत्तेजना मिली। एक तो जैसा ऊपर कहा गया है धार्मिक और सामाजिक नैराश्यके समय एक ऐसे भगवानकी लोगोंने कल्पनाकी जो मनुष्यकी कठिनाइयोंमें उनकी पुकार सुने और जिसे अपने सम्मुख देखकर वे अपने विदग्ध हृदयको शान्ति प्रदान कर सकें और इसीलिये मानवोचित गुणोंसे उसे विभूषित किया। मुसलमानोंके धार्मिक सिद्धान्तोंका भी प्रभाव पड़ा। उनका एकेश्वरवाद, निर्गुण परमात्मा हिन्दुओंके लिये कोई नयी बात नहीं थी। यह तो हिन्दू धर्मका प्राचीन सिद्धान्त था किन्तु मुसलमानोंके सामने इसे फिर नये रूपमें रखना था। यद्यपि कोई हिन्दू मुसलमानी धर्मके सिद्धान्तोंसे प्रभावित होकर मुसलमान नहीं बना सब जबरदस्ती ही बनाये गये फिर भी उनके सामने सभी अस्त्र-शस्त्र रखना था।

राजनीतिक उथल-पुथलमें धार्मिक बातोंकी ओर लोगोंका ध्यान कम जाता है। जब जानके लाले पड़ जाते हैं तब साधारण जनता ईश्वर और आत्माकी ओर कम ध्यान देती है। पाखण्ड और आडम्बर अवश्य बढ़ जाते हैं। बौद्धधर्मके अन्तिम कालमें हिन्दू धर्म केवल बाहरी दिखावटमें साधारण जनताके हृदयमें रह गया। पण्डित लोग शास्त्रोंका अध्ययन करते रहे अवश्य किन्तु जनतामें धर्म-का अर्थ तीर्थाटन, पर्व स्नान और विवेकहीन कर्मकाण्ड तक ही सीमित था। व्रजयानियोंने, जिनका संकेत तीसरे अध्यायमें आया है इसका भी घोर विरोध किया। गोरखनाथके अनुयायियोंने योगिक सिद्धिके प्रचार द्वारा और भी गोरखधन्धा फैलाया जिसे

साधारण लोग समझ ही न सके। वे लोग मंत्र-तंत्रको ही धर्म मानने लगे।

ऐसे समय कुछ ऐसी विभूतियोंका प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने भक्तिका ऐसा स्रोत बहाया जिसके प्रवाहमें हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी बह चले। राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों द्वारा भगवानके ऐसे स्वरूपको ये लोग जनसाधारणके सम्मुख लाये जो मनुष्यका सामान्य रूप था, लोक रक्षक था, मधुर था और शान्तिदायक भी था। डूबते हुए हिन्दुओं को सहारा तो मिला ही, हिन्दू-मुसलमानोंके भेद-भाव मिटानेमें भी सहायक हुआ।

दक्षिणमें रामानुजाचार्यने (संवत् १०७३) शंकरके मायावादका विरोध करके श्रुतियों और गीताके आधार पर सगुण भक्तिका प्रतिपादन किया और उसकी ओर जनता आकृष्ट हो चली थी। उनका संदेश उत्तर भारत और मध्य भारतमें भी फैला। गुजरातमें मध्वाचार्यने, उत्तर तथा मध्यभारतमें रामानुजके शिष्य रामानन्दने विष्णुके अवतार रामकी उपासना पर जोर दिया, वल्लभाचार्यने कृष्णकी भक्तिकी ओर लोगोंको आकर्षित किया। इस प्रकारकी सगुण उपासनाके साथ-साथ नवीन स्थितिके प्रभावसे हिंदू मुसलमानों के लिये एक सामान्य मार्गकी स्थापना हुई जिसमें निर्गुण भगवानकी उपासना का मार्ग बताया गया।

इन प्रवृत्तियोंका हमारे हिन्दी-साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन धार्मिक भावनाओंने हिन्दी-साहित्यमें ऐसे-ऐसे प्रतिभा-पूर्ण व्यक्तियोंको जन्म दिया जिन्होंने हिन्दी साहित्यको पुष्ट ही नहीं किया सदाके लिये अमर बना दिया। भक्ति मार्गकी अनेक धाराओंके अनुसार हिन्दी साहित्यमें, मुख्यतः हिन्दी काव्यमें, अनेक रचनाएं हुईं। साहित्यकी दृष्टिसे भक्ति मार्गकी दो मुख्य धाराएँ हुईं। निर्गुणोपासनाकी धारा, दूसरी सगुणोपासनाकी धारा। निर्गुणोपा-

सनाकी दो शाखाएँ मानी गयी हैं। एक संतोंकी ज्ञानाश्रयी शाखा दूसरी सूफियोंकी प्रेम मार्गी शाखा। सगुणोपासना वालोंमें रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा दो भेद हैं।

ज्ञानाश्रयी संतोंकी रचनाओंमें हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेकी प्रवृत्ति पायी जाती है, इन्होंने दोनोंके द्वेष-भावकी निन्दा की है। इन्होंने पुराण कुरान सभीकी निन्दा की है। सरल तथा सदाचार जीवन पर जोर दिया। ऊँच-नीच, जात-पांतकी निन्दा की गयी और इन कवियोंने बताया कि ईश्वरकी उपासनाका सबको समान अधिकार है। इसका सूत्रपात्र हिन्दीमें महाराष्ट्र देशके रहने-वाले नामदेव द्वारा हुआ।

ज्ञानाश्रयी शाखाके सबसे प्रसिद्ध कवि कबीर हैं।

कबीरदास

कबीरदासके भी जन्म-मरणके संबंधमें कुछ निश्चित जानकारी नहीं है। अब तक जो कुछ खोज हुई है उसके आधारपर इनका जन्म संवत् १४५६ और मरण संवत् १५७५ माना जाता है। यह भी कहते हैं कि यह किसी ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे जिसने इन्हें काशीके लहरताराके तालाबमें फेंक दिया था। इन्हें किसी मुसलमान जोलहेने लाकर लालन-पालन किया। बाल्यावस्थामें यह बस्ती जिलाके मगहर ग्राममें रहते थे, फिर काशी आये और संभवतः मरनेके समय फिर मगहर चले गये। स्वामी रामानन्द इनके गुरु हुए। कुछ लोग कहते हैं इनके गुरु एक सूफी मुसलमान शेख तकी थे।

साधु संतों की संगतके कारण कबीरका ज्ञान बहुत विस्तृत था। पुराण, वेदांत, उपनिषदके सम्बन्धमें उन्होंने बहुत-सी बातें सुन रखी थीं। योगिक क्रियाओंके बारेमें भी उन्होंने सुना था। उनकी रच-

नाओंमें बहुतसे शब्द आये हैं जिनसे पता चलता है कि योग सम्बन्धकी शब्दावली उन्हें ज्ञात थी। यह तो स्पष्ट है कि वे स्वयं योगी नहीं थे। किन्तु उन्होंने इस सम्बन्धमें सुन-सुन रखा था। उनकी रचनाओंमें हिन्दू मुसलमान धर्मोंका पदे पदे उल्लेख मिलता है। पर अन्य धर्मोंके संबंधमें भी उन्हें जानकारी थी। सरल जीवन तथा अहिंसाके समर्थक थे।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। संसर्गसे जो कुछ सीख सके थे व उनका ज्ञान था। स्वामी रामानन्दकी राम-भक्तिका मार्ग इन्होंने पकड़ किन्तु कबीरके राम दशरथके सुत वाले सगुणोंपासनाके राम नहीं थे। कबीरके राम ब्रह्मके प्रतीक थे। इसीलिये कबीरका मार्ग निर्गुण ब्रह्मोपासनाका मार्ग है। कबीर वैष्णव नहीं थे यद्यपि वैष्णवों उन्होंने अहिंसाका तत्त्व लिया था। सूफियोंसे उन्होंने प्रेम तत्त्व लिया था। इस प्रकार सब मिलाकर उन्होंने एक ज्ञान-मार्गका अल पंथ चलाया जिसमें हिंदू तथा मुसलमान दोनों सम्मिलित हुए।

यह छंद-शास्त्रसे भी अनभिज्ञ थे, काव्य शास्त्रसे भी। इन रचनाओंमें पिंगलके दोष बहुत मिलते हैं। किन्तु इसी अनभिज्ञता कारण इनकी रचनाओंमें एक प्रकारकी सरलता आ गयी जिस बाहरी आडम्बर, कृत्रिम अलंकारों तथा मानसिक कलाबाजी अभाव है। इनमें प्रतिभा थी, इसलिये रचनामें मौलिकता है इनकी भाषा दो प्रकारकी है। शिक्षा और सिद्धान्तकी भाषा मुख्यतः जनताके उपदेशके लिये थी वह सधुक्कड़ी है 'अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली हैं।[1] गेय पदोंकी भाषा और पूरबी है। व्याकरणके नियमोंका पालन भी नहीं किया शब्दोंको तोड़ा-मरोड़ा भी खूब है। भाषामें एक अकड़पन है औ

१ पं० रामचन्द्र शुक्ल।

कोमलता नहीं पाई जाती किन्तु अनेक रूपकों तथा उपमाओंसे इन्होंने अपने सिद्धांत समझाये हैं। भाषा ग्रामीण है किन्तु मीठी है। इन्होंने बातें वही कहीं हैं जो प्राचीन शास्त्रोंमें कही जा चुकी हैं किंतु कहनेके ढंगमें नवीनता है। हिन्दू और मुसलमानोंके बाहरी धार्मिक आडम्बरोंको इन्होंने आड़े हाथ लिया है। हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताका इनका प्रयत्न श्लाध्य है। यह हिंदीके पहले रहस्यवादी कवि हैं। इनकी रचनाएँ बहुत-सी इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं। बहुत-सी रचनाएँ इनके नाम पर बन गयी हैं। इनकी रचनाओंके संग्रहको 'बीजक' कहते हैं जिसमें रमैनी, सबद और साखी हैं। इनकी उलट-बासियाँ भी बहुत प्रसिद्ध है।

इसी ज्ञानाश्रयी शाखामें और अनेक सन्त कवि हो गये हैं जिनमें से थोड़ा परिचय विशेष लोगोंका दिया जाता है।

रैदास—इन संतोंमें रैदासका नाम बहुत विख्यात है। रामानंद के बारह शिष्योंमें यह भी थे। संभवतः यह भी काशीके रहनेवाले थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता है कुछ फुटकर रचनाएँ लोगोंसे मौखिक सुनी जाती हैं।

नानक [सं० १५२६–१५९६]

दूसरे विख्यात संत कवि नानक हुए हैं। यह लाहौर जिलाके तिलवंडी गाँवमें संवत् १५२६ को पैदा हुए थे। मुसलमानोंके निराकार खुदाके सम्मुख रखनेके लिए कबीरने जो निर्गुण पथका सहारा लिया उसीको इन्होंने भी अपनाया। हिन्दू-मुसलमानोंमें यह भी एकता स्थापित करना चाहते थे। यह सिख संप्रदायके आदि गुरु हुए। यह फारसीके विद्वान् थे, संस्कृत तथा शास्त्रोंका मौलिक ज्ञान कितना था पता नहीं। सीधी-सादी भाषामें इन्होंने कविताकी जिसका असर जनता पर पड़े।

सूफी-संत और साहित्य

सन्त कवियोंने परमात्माकी निर्गुणोपासना सिखायी। जनता ने उसे ग्रहण भी किया, उनकी वानी अटपटी थी, राम रहीमको एक करनेका उद्योग था। ये संत पढ़े-लिखे थे नहीं, हिन्दू-मुसलमान दोनोंके दंभोंका खण्डन किया। फिर भी जनता पर बहुत प्रभाव इनका पड़ा। इनके बाद ऐसे कवियोंका आगमन हुआ जो थे तो निर्गुणोपासक किन्तु उनका परमात्मा प्रेमका भाण्डार था, इनकी उपासना वहुत मधुर तथा सरस थी। इन्हींको प्रेममार्गी कवि कहते हैं। ये सूफी संप्रदायके थे। सूफी सम्प्रदाय इसलाम धर्मकी ही शाखा थी। ये भी एक ही ईश्वरको मानते थे किन्तु उससे भी ऊपर उठकर इन्होंने जीव और जगत्को भी ईश्वर माना। इससे कट्टर मुसलमान इनके विरोधी हो गये और इन्हें काफिर कहने लगे। सूफी मतके अनुसार ईश्वर निर्गुण तथा निराकार होते हुए प्रेमका अनंत भांडार है। इन्होंने जो कुछ लिखा सांसारिक आड़में पारलौकिक प्रेमके सम्बन्धमें लिखा। इसीसे इनकी रचना रहस्यात्मक कही जाती है।

हिन्दीमें जो सूफी परम्पराके कवि हुए हैं उन्होंने सिद्धान्त तो सूफीमतके लिये उसपर मुलम्मा भारतीय किया। यह सब कवि मुसलमान ही हुए और सबने ही अवधी भाषाका प्रयोग किया, सबने प्रबन्ध काव्य लिखे और दोहा-चौपाइयोंका प्रयोग किया जो अब भी भाषाके बड़े सफल छंद हैं। इनके कथानक सब भारतीय हैं। फारसी ढङ्ग इन्होंने यह अपनाया कि इनकी कविता मसनवियोंके ढंग पर हुई है। इसलामी साहित्यमें नायक ही अधिक प्रेम मत्तरहता है। व

तो इन्होंने किया है किन्तु उसका भारतीकरण करनेके लिये नायिका को भी प्रेममें विह्वल बनाया और भारतीय परम्पराके अनुसार इनका प्रेम असंयत नहीं है। इनकी रचनाओंमें प्रकृतिके सुंदर स्वरूपका चित्रण भी है। सूफी सिद्धांतके अनुसार अन्तमें आत्मा तथा परमात्माका मिलन है इस कारण इनकी कथा दुखांत होती थी। इस सम्प्रदायके पीछेके कवियोंने इसमें भी भारतीय आदर्शवादका सम्मेलन किया और कथा सुखांत हो गयी।

इनका प्रेम तो ईश्वर के ही प्रति था, लौकिक कथा सहारा मात्र थी किन्तु कथाएँ कहीं असम्बद्ध या उखड़ी नहीं हैं। उनका साहित्यिक स्वरूप निखरा हुआ है, रमणीय है। इनकी दृष्टि बहुत व्यापक है। भावनाओंका चित्रण सूक्ष्म तथा भावपूर्ण हुआ है। इनकी कविता में सरल और सादे जीवनकी शिक्षा है, भारतीय अद्वैतवाद की गहरी छाप है। इनपर अनेक भारतीय शास्त्रों तथा धार्मिक सिद्धांतोंकी गहरी छाप है और अपने प्रेम मार्गकी इन्होंने इन्हींके सहारे पुष्टि की है। ईश्वर इनका प्रियतम है। इसी रूपमें इन्होंने उसे माना है। नायिकाएँ ईश्वरकी ही व्यंजना हैं। इनकी रचनामें उदारता भी पर्याप्त मात्रामें हैं। फिर भी ये रचनाएँ उतनी लोकप्रिय नहीं हुईं जितनी सन्त कवियोंकी। भाषाकी दृष्टिसे भी इनका स्थान ऊँचा है। इन्होंने अवधीका परिमार्जन किया।

कुतबन—इस सम्प्रदायके पहिले प्रमुख कवि कुतवन हैं जो शेरशाहके पिता हुसेनशाहके समयमें संवत् १५५० के लगभग थे। इन्होंने मृगावती नाम की कहानी संवत् १५५८ में लिखी जिसमें चन्द्रगिरीके राजकुमार तथा कंचन नगरकी राजकुमारी मृगावतीका रूपक लिया गया है।

मंझन—दूसरे कवि मंझन हैं। इनकी रचना मधुमालतीकी एक प्रति प्राप्य है वह भी खंडित।

जायसी [१६४६—१६६८]

प्रेममार्गी सूफी कवियोंमें सबसे प्रसिद्ध मलिक-मुहम्मद जायसी हुए हैं। अवध प्रांतके जायसके यह रहने वाले सत्संगी थे, अपने समयके फकीर थे। यह काने थे, कुरूप थे। इनके जन्म और मृत्युका ठीक पता अभी तक नहीं लगा। शेरशाहके समयमें यह थे इतना ज्ञात है क्योंकि पद्मावतमें इन्होंने शेरशाह, शाहे वक्तकी प्रशंसा की है।

जायसीकी लिखी तीन पुस्तकें मिली हैं, पद्मावत और अखरावट तथा आखिरी कलाम। इनमें पद्मावत ही अधिक महत्वपूर्ण है। यह भी एक प्रबंध-काव्य सूफी कवियोंके ढंग पर है। इसमें एक विशेषता यह है कि इसकी कथाका आधार ऐतिहासिक है यद्यपि कल्पनाका पुट भी काफी है। पूर्वार्द्धकी कथा कल्पित है, उत्तरार्द्धका आधार ऐतिहासिक है। इस काव्यकी एक और विशेषता है। पद्मावतकी कथा द्वारा लोकोत्तर प्रेमकी भावना कवि जाग्रत करता है पूर्वार्द्धमें एकांत प्रेमका ही वर्णन है किन्तु उत्तरार्द्धमें लोकपक्षका भी विधान है। इनके पहिलेके सूफी कवियों में, प्रेम, करुणा, श्रद्धा, भक्ति आदि मानव हृदयकी कोमल भावनाओंका ही वर्णन है, जायसी इनसे आगे बढ़े हैं। लोक-दृष्टिको ध्यान में रखकर वीर भावनायें, रौद्र भावनायें, भी यह पद्मावतमें लाये हैं। फिर भी माधुर्य और सरलता की ही प्रधानता है। इनकी प्रेम कथा बहुत ही मर्म स्पर्शिणी है लोकोत्तर प्रेमकी भावनासे ओत-प्रोत है। कथाका निर्वाह भावोंकी व्यंजना, वर्णनोंकी सजीवता अनेक स्थलोंमें अज्ञातके प्रति संकेत सभी प्रशंसनीय हैं। इसके अतिरिक्त इस शाखाके मुख्य कवि चित्रा-वलीके लेखक **उसमान** (सं० १६७०) ज्ञानद्वीपके लेखक **शेखनबी** (सं० १६७६) हंस जवाहिरके लेखक **कासिम शाह** (सं० १७८[illegible]) तथा इन्द्रावतीके कवि **नूर मुहम्मद** (सं० १८०१) हैं।

राम भक्ति धारा

गोस्वामी तुलसीदास

ऊपर लिखा जा चुका है कि मुसलमानोंके आक्रमण तथा विजय के परिणामस्वरूप तथा वज्रयान और नाथ पंथियोंके प्रचारकी प्रतिक्रियाके कारण भक्ति संप्रदायका पुनरुत्थान हुआ। विष्णुकी भक्ति अनेक रूपोंमें चली। रामानुज सम्प्रदायके अनुयायी रामानन्द ने रामकी भक्ति फैलायी। उन्होंने रामको परब्रह्म माना और जात-पाँतके भेद-भाव बिना सबको इसकी दीक्षा दी। कबीरकी रहस्यपूर्ण वाणी सबकी समझमें आना कठिन थी, सूफी मार्गी कवि विदेशीपन लिये ही थे, लोग एक लोकोपकारक भगवानकी खोजमें थे जिनकी प्रत्यक्ष मूर्तिके सम्मुख रोकर, गाकर, अनुनय-विनयकर रिझानेकी चेष्टा करें। रामानन्दका भक्ति सम्प्रदाय अनेक रूप धारण करके देश भरमें फैला। इसकी शिष्य परम्परामें गोस्वामी तुलसीदास हुए

इनकी जीवनीके सम्बन्धमें जो कुछ खोज अभी तक हुई है उसमें भी बड़ा मतभेद है। उनके दो जीवन वृत्त मिलते हैं। उनके समकालीन शिष्य बाबा बेणीमाधव दास कृत 'गोसाईं चरित' और महात्मा रघुवर दास लिखित 'तुलसी चरित'। इसके अतिरिक्त परम्परा से चली आयी जन-श्रुतियाँ। दोनों जीवन चरितोंमें जो इस समय मिलते हैं कितनी सचाई है, यह भी नहीं कहा जा सकता। सबका समन्वय करके अभी तक जिस निर्णय पर लोग पहुँचे हैं वह यह है कि इनका जन्म बाँदा जिलेके राजापुर ग्राममें संवत् १५५४ में हुआ था। राम-

चरित मानसकी एक अर्धालीके आधारपर[1] कुछ लोग कहते हैं इनका जन्म सोरों हुआ था। भाषाकी परख करनेपर तथा औ प्रमाणोंसे यह ठीक नहीं जान पड़ता। जनश्रुतिसे यह भी विख्या है कि इनकी माताका नाम हुलसी और इनके पिताका नाम आत्म राम दूबे था। यह भी लोग कहते हैं कि यह अभुक्त मूल नक्षत्रमें पै हुए थे इसलिये माता पिताने इन्हें त्याग दिया था। इनका विवा रत्नावलीसे हुआ था जिससे यह बहुत प्रेम करते थे। एक बार व अपने मैके चली गयी और यह रातमें घोर वर्षामें वहाँ पहुँचे। इनव स्त्रीने इनकी भर्त्सनाकी और इन्हें विराग हो गया। घर-बार त्या कर चले गये। बालकांडके आरम्भमें जो सोरठा है।[2] उसके आध पर लोग कहते हैं कि इनके गुरु बाबा नरहरिदास थे। किन्तु जै बालकांडके और सोरठे संस्कृतके विभिन्न ग्रंथोंके अनुवाद हैं उ भाँति कहा जाता है यह सोरठा भी जाबालि संहिताके एक श्लोक अनुवाद है।[3] इस प्रकार इनके जीवनके वृत्तके सम्बन्धमें अभी ब खोजकी आवश्यकता है।

इनकी पुस्तकोंके अध्ययनसे इतना निश्चित है कि इन्होंने स भारतका भ्रमण किया था, और इनका अध्ययन भी विस्तृत थ इनकी मृत्यु काशीमें संवत १६८० में हुई थी। किन्तु प्रचलित मत अनुसार उनकी मृत्यु सावन सुदी ७ को नहीं हुई श्रावण कृष्ण तृती को हुई। इन्होंने सम्वत १६३१ में हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ रामचरि मानसका आरम्भ अयोध्यामें किया और काशीमें आकर सम

---

१ मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत

२ बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि

३ वंदे गुरु पदाब्जं यो ना रूपः स्वयं हरिः
यद्वाक्य सूर्योदयतस्तयो नश्यति साम्प्रतम्

किया। दो साल सात महीने इस ग्रंथके निर्माणमें लगे। इसके अतिरिक्त इन्होंने विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू, बरवैरामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली लिखी है। इसके अतिरिक्त और ग्रंथों के सम्बन्धमें भी इनका नाम लिया जाता है किन्तु उनके सम्बन्धमें बहुत कुछ सन्देह है।

इनकी प्रतिभा और पांडित्यके कारण इनके ग्रन्थों और विशेषतः रामचरित मानस का भारतीय जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंका सार रामचरित मानसमें रख दिया है किन्तु ऐसे ढङ्ग से कि उसमें मौलिकता आ गयी है। रामचरित मानस प्रांजल अवधी भाषामें लिखा गया है जिसमें भोजपुरीका कहीं कहीं पुट है। एक प्रवन्ध काव्यमें जिन अवयवोंकी आवश्यकता है उन सबका सुन्दर समन्वय है। कथा, वर्णन, संवाद और भावव्यञ्जना सब ठीक नपे-तुले रखे गये हैं। कहीं आवश्यकतासे अधिक कोई बात नहीं कही गयी है। जहाँ जिस रसका वर्णन किया गया है उसीके अनुकूल भाषाका प्रयोग किया गया है और जहाँ आवश्यकता पड़ी है वर्णन वैसा ही मर्मस्पर्शी किया गया है। शृङ्गार रसमें सदा शिष्ट मर्यादाका ध्यान रखा है। अपने विशिष्टाद्वैत सम्प्रदायका प्रतिपादन करते हुए इन्होंने शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायोंका भेद-भाव मिटानेकी सदा चेष्टा की है। मानस केवल साहित्यिक सौंदर्य और गरिमा ही नहीं है, धार्मिक और सामाजिक शिक्षा, कर्तव्य पालन आदिका ज्ञानकोष भी है। भक्तिके साथ लोक पक्षका ऐसा सुन्दर समन्वय स्थापित किया है कि व्यक्तिगत साधनाके साथ लोक-धर्मकी अत्यन्त उज्वल छटा उसमें पायी जाती है। उदारता इस ग्रन्थका मूल मन्त्र है। आदर्शवाद की सुन्दरताके साथ-साथ यथार्थ वाद ही इस ग्रन्थकी विशेषता है। इन्हीं सब कारणोंसे रामचरित मानस युग-प्रवर्तक ग्रन्थ बन सका

और भारतके पढ़े-लिखे लोगोंके लिये एक सुन्दर सरस साहित्यि अध्यात्मका ग्रन्थ हुआ है। अपढ़ लोगोंके लिये वेद तुल्य है।

गोस्वामीजीके पहले काव्य लिखनेकी कई शैलियाँ हिन्दी चल रही थीं। वीरगाथा कालकी छप्पय पद्धति, जिसे इन्होंने भी यु इत्यादिके वर्णनमें व्यवहार किया, जिसका उदाहरण हमें लंकाकां में मिलता है। दूसरी पद्धति गीतों की थी जो सूरदास, विद्याप आदिकी परम्परामें थी। उस शैलीमें गोस्वामीजीने गीताव विनयपत्रिका आदि लिखी, तीसरी शैली कवित्त, सवैया की थी। इ ढङ्ग पर इन्होंने कवितावली लिखी। नीतिके उपदेश वाली निर्गु कवियोंकी दोहोंकी शैली थी जिस शैलीमें उनकी दोहावली है चौपाई दोहों वाली पद्धति प्रेम मार्गियोंकी थी जिस शैलीमें इन्हों रामचरित मानस लिखा। जो भी शैली इन्होंने अपनायी सबमें पू सफलता प्राप्त की। कहीं शिथिल होने नहीं पाये हैं।

इनका अवधी तथा व्रज दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था और जिस भाषाका जिस रचनामें इन्होंने प्रयोग किया सफलत पायी। अन्तमें यही कहा जा सकता है कि भाषा, साहित्य, औ संस्कृति सभी दृष्टियोंसे तुलसीदास हिन्दीके सर्वोत्कृष्ट साहित्यकार थे जिसका जोड़ हिन्दीमें नहीं पैदा हुआ।

रामभक्ति शाखाके और कवियोंने इतनी प्रतिभा नहीं दिखाई इस शाखाके और प्रमुख कवि स्वामी अग्रदास (सं० १६३२), नाभा दास, (१६५७ सं०) प्राणचन्दचौहान, तथा हृदय राम हुए।

कृष्ण भक्ति शाखा

सूरदास (सं० १५४०–१६२०)

शंकरके अद्वैतवादके विरोधमें भक्ति संप्रदाय खड़ा हुआ जिसमें रामानुजने रामकी भक्तिकी परंपरा चलायी, इस बातका संकेत ऊपर किया गया है। जिस प्रकारसे रामकी भक्तिका प्रचार हुआ उसी भाँति कृष्णकी भक्ति भी चली। महाभारतके कृष्ण अवतार नहीं हैं, गीताके कृष्ण भगवानके अवतार हैं और भागवतके कृष्ण भक्तोंके सुन्दरतम उपास्य देव। दक्षिणमें मध्वाचार्यने कृष्ण भक्ति की परम्परा आरम्भकी। इसी परम्परामें वल्लभाचार्य हुए जो वहुत विद्वान् थे जिन्होंने भारत भरमें भ्रमण किया और वृंदावनमें जाकर बस गये। वल्लभ संप्रदायने भागवतके ही अनुसार कृष्णकी उपासना में मधुर भावना सम्मिलितकी। भागवतमें यद्यपि राधाका वर्णन नहीं है किन्तु निंबार्क संप्रदायने उपासनामें राधाको भी सन्निविष्ट किया था। वल्लभाचार्यके पुत्र तथा उत्तराधिकारी गोसाईं बिट्ठलनाथ ने अष्ट छापका संगठन किया जिसमें आठ कवि थे, सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुज दास और नंद दास।

कृष्ण भक्त कवियोंने कृष्ण भक्तिका मधुर स्रोत बहा दिया। यद्यपि लोकपक्ष तथा जीवनके अनेक गंभीर पक्षकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया किन्तु सरसताका ही अधिक ध्यान रखा है। भक्ति की तल्लीनतामें भगवानके सम्मुख गीत होते थे इसलिये कृष्ण भक्ति

के कवियोंने अधिकांश फुटकल रचना हीकी है। इस संप्रदाय के सबसे बड़े कवि सूरदास हुए हैं।

प्राचीन अनेक कवियोंकी भाँति सूरदासके विषयमें भी निश्चित समय कुछ ज्ञात नहीं है। किंवदंती और दंत कथाओं द्वारा बहुत कुछ उनके जीवनके सम्बन्धमें जाना गया है। उनके मरण तथा जन्म तिथियाँ निश्चित नहीं हैं। खोजके आधार पर जो अनुमान लगाया गया है वही ऊपर दिया गया है। यह बात निश्चित है कि आगरे से मथुरा जाने वाली सड़कके किनारे रुनुकता ग्राममें यह रहते थे। अंधे थे यह तो इनके नामसे प्रकट होता है। किन्तु इनकी रचना में अनेक ऐसे वर्णन आये हैं जिनसे यही कहा जा सकता है कि जन्मसे अंधे नहीं थे। रंगोंका वर्णन, पुरुषोंका वर्णन, वस्त्रों वर्णन जैसा इन्होंने किया है वैसा कोई जन्मसे अन्धा नहीं सकता। इनकी भेंट वल्लभाचार्यसे हो गयी। उनके साथ यह वृन्दावन चले आये। वहीं भगवान्‌की भक्तिमें तल्लीन होकर पद बनाते गाते। कहा जाता है इन्होंने सवा लाख पद बनाये किन्तु अब सहस्त्र पद ही मिलते हैं। उन पदोंका संग्रह सूर सागरके नाम विख्यात है। इनके पद भागवत्‌के आधारपर बने हैं। गोस्वामी बिठ्ठलनाथने जो अष्टछापकी स्थापनाकी उसमें पहले कवि सूर ही हैं।

यों तो पहले भी कवि हो गये हैं किन्तु साहित्यिक सुषमा सौंदर्यकी दृष्टिसे यदि देखा जाय तो सूर ही पहले हिन्दीके हैं। इनकी भाषा प्रांजल, मँजी व्रजभाषा है। इनकी रचनामें मधुर सरलता और कोमलता पायी जाती है। सूरदासने वात्सल्य, विरह आदि भावोंको अपनी रचनामें बड़ी कुशलतासे व्यक्त है। यद्यपि पूतनाबध, कालिया-मर्दन, गोवर्धन-लीला, कंस-वध

वर्णन भी इन्होंने किया और इनके द्वारा कृष्णके लोक नायक होनेके पक्षको भी दिखाया है किन्तु इनकी विशिष्टता भगवान् कृष्णकी भक्तिका मधुर पक्ष ही है। इन्होंनें कृष्णके लोक नायक पक्षको नहीं ग्रहण किया। कृष्णके बाल्य जीवनका जितना सहृदय, मनोवैज्ञानिक तथा स्वाभाविक वर्णन इन्होंने किया है, वैसा हिन्दीमें और कोई कभी नहीं कर सका। प्रेमका वियोग तथा संयोग दोनों अवस्थाओंमें इन्होंने मार्मिक वर्णन किया है। इन्होंने कृष्णको मधुरिमामय सरस भगवान्का अवतार माना और इसी दृष्टिसे उनका वर्णन किया है। इनकी भक्ति सखा भावकी थी। सूरके कृष्ण भागवतके कृष्ण हैं, गीताके नहीं। भ्रमर गीतमें उन्होंने सगुण भक्तिका प्रौढ़तासे समर्थन किया है।

नंददास

अष्टछापके दूसरे विख्यात कवि नंददास हैं। इनकी रचनामें भी बड़ा माधुर्य है। इनकी भाषा अनुप्रास युक्त संस्कृत मिश्रित है। इनकी लिखी 'रासपंचाध्यायी' और भ्रमर गीत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे ग्रंथ इन्होंने लिखे हैं। भ्रमरगीतमें सगुणोपासनाकी मार्मिक व्यंजना है। विप्रलंभ शृङ्गारका महान् उत्कृष्ट काव्य है।

अष्टछापके और कवियोंमें वह साहित्यिक और भाषाका सौंदर्य नहीं है जो इन दोनों में।

हित हरिवंश जी भी कृष्ण भक्ति शाखाके एक अच्छे कवि हो गये हैं। इनका जन्म सं० १५५८में मथुराके निकट एक गांवमें हुआ था। यह राधावल्लभी सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। आपकी रचना बहुत मधुर है आप श्रीकृष्णकी वंशीके अवतार कहे जाते हैं। इनका ग्रंथ हितचौरासी भी है, इसके अतिरिक्त अनेक फुटकल पद भी मिलते हैं।

मीराँ

[सं० १५७३–१६०३]

मीराबाई जोधपुर राज्यके प्रतिष्ठाता राव जोधाजीकी प्रपौ तथा रत्नसिंह राठौरकी पुत्री थीं। इनका विवाह उदयपुरके महारा कुमार भोजराजके साथ हुआ था। बचपनसे ही इनकी भक्ति कृ की ओर थी और उनकी पूजा-अर्चनामें ही ये लीन रहा करती थी विवाहके थोड़े ही दिनों बाद इनके पतिका परलोकवास हो गया इसके पश्चात् इनकी भक्ति-भावना और भी बढ़ गई। अपने परिवा के लोगोंकी भी परवा न करके ये सदा साधु-सन्तोंके साथ मंदिर भगवान कृष्णकी पूजा तथा अर्चना किया करती थीं। मूर्तिके साम भक्तिमें विह्वल होकर नाचती थीं। इनका यह आचरण राजकुल अच्छा नहीं लगता था और इन्हें विष देनेकी भी चेष्टा की गई। कि कहा जाता है कि इनपर विषका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। घ वालोंके व्यवहारसे तंग आकर वे वृन्दावन तथा द्वारका चली ग और वहां मन्दिरोंमें कीर्तन करती थीं। वहां इनका सम्मान देवि का-सा होता था। किंवदन्ती है कि इन्होंने तुलसीदास जीको एक प लिखकर पूछा था कि घरवालोंका ऐसा व्यवहार है, क्या कर चाहिए। अब तक मीराबाईके जन्म-मरणकी तिथिका जो पता ल है उससे यह घटना असत्य-सी जान पड़ती है, क्योंकि मीराबाई मृत्यु संवत् १६०३ में हो चुकी थी।

इनकी कविताकी भाषा व्रज है जिसमें स्थल-स्थल पर गुजराती त राजस्थानीका भी समावेश है। इनके चार ग्रन्थोंका नाम मिलता है

ये सब गेय पद हैं। इनकी भक्ति मधुरभावकी है। इन्होंने भगवानको अपने पतिके रूपमें माना है। इनके पदोंमें भक्तिकी तल्लीनता विशेष-रूपसे दिखाई देती है। इन्होंने वियोग शृङ्गारका बड़ा मार्मिक तथा मधुर वर्णन किया है। ये सचमुच कृष्णके प्रेम में दीवानी थीं और यह दिवानापन इनके प्रत्येक पदमें झलकता है। इनकी गणना भारतके प्रधान भक्तोंमें है। इनकी कविताओंके संग्रह-मात्र मिलते हैं।

रसखानि

[जन्म सं० लगभग १६४०—मृत्यु सं० लगभग १६८५]

रीतिकालमें जिन कवियोंने अमृतकी वर्षाकी है उनमें रसखा[न] अत्यन्त जनप्रिय हैं। ये बादशाही खानदानके दिल्लीके पठान थे इनका मानवीय प्रेम कृष्ण-भक्तिके रूपमें परिवर्तित हो गया था ये गोसाईं विट्ठल नाथजीके शिष्य थे। २५२ वैष्णवोंकी वार्ता [में] भी इनका उल्लेख है।

इनके प्रेम भरे सुन्दर उद्गारोंके कारण जनसाधारणने प्रेम [और] शृंगारके सवैयोंको ही 'रसखान'के नामसे पुकारना प्रारम्भ किया इनकी भाषा अत्यन्त चलती, सरस और शब्दाडम्बर रहित होती है कृष्ण भक्त कवियोंके समान गीति-काव्यका नहीं बल्कि कवित्त, सवै[या] का प्रयोग इन्होंने किया है। अनुप्रासकी सुन्दर छटा भाषाकी चुस्[ती] और दुरुस्ती तथा मर्मस्पर्शी भाव इनकी विशेषताएँ हैं। कृष्ण[की] लीला पक्ष लेकर इन्होंने अत्यन्त मनोहारी रचनाएँ की हैं जो लो[गों] को कंठस्थ हैं। इनकी दो छोटी कृतियाँ 'प्रेम वाटिका' और 'सुजा[न] रस-खान' पायी जाती हैं।

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास सीतापुर जिलेके बाडी ग्रामके रहनेवाले थे, इनके जन्म-मरणके सम्बन्धमें कुछ मालूम नहीं है। इनका सुदामाचरित्र बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें अपने सहपाठी श्रीकृष्णके यहाँ सुदामा के जाने और फिर इन्हें भगवान्के वैभव प्रदान करनेका वर्णन है। इनकी रचना सरल परिमार्जित ब्रजभाषामें है। इन्होंने दरिद्रताका बड़ा सजीव वर्णन किया है।

अपनी स्त्रीके वारंवार कहनेसे सुदामा द्वारका जाते हैं, वहाँका वैभव देखकर वे घबरा जाते हैं। श्रीकृष्णके महलमें जाकर द्वारपालसे संदेशा कहलाते हैं। द्वारपाल जाकर भीतर बताता है।

इसमें मित्रताकी मर्यादाका बहुत सुन्दर निर्वाह किया गया है, वर्णनमें मनुष्यकी मनोवृत्तिका सजीव चित्रण है।

नरोत्तमदासकी शैली बड़ी मीठी, हृदयग्राहिणी और प्रसाद गुणपूर्ण है।

कृष्ण भक्तिके और भी अनेक कवि हो गये हैं। इस समय मुगलोंका शासन था जो पठानोंकी भाँति संकीर्ण नहीं थे। उन्होंने ऐसे मधुर साहित्यिक सर्जनको प्रोत्साहित किया। अकबर स्वयं कवि थे, बीरबल, टोडरमल, गंग आदि इस युगके कवि थे और गंग आदि की कविता तो साहित्यिक स्तरकी होती थी। गंगकी रचना बड़ी ओजपूर्ण है। इन्होंने कवित्त लिखे हैं जिनमें भावानुकूल शब्दोंका प्रयोग किया है। आलम, मुबारक कादिर ऐसे मुसलमानोंने भी भगवानकी भक्तिके गीत गाये और सुन्दर तथा मधुर स्वरोंमें।

भक्तिकालके कवियों द्वारा ब्रजभाषा खूब पुष्ट हुई और मधुर भ
के काव्यकी रचना की हिन्दीमें बाढ़-सी आ गयी। देशमें कृष्ण
भक्तिका ऐसा रस बहा कि रामकी भक्तिका साहित्य उसमें डूब
गया। समाज पर इसका प्रभाव बुरा भी पड़ा। राधा और कृष्ण
नाम पर ऐसी रचनाएँ होने लगीं जो स्वस्थ नहीं थीं और जिन
शृंगारी भावनाओंको उत्तेजना मिलती थी। किन्तु ऐसी रचना
विशेषतः पीछे आयीं। इसके सम्बन्धमें आगे बताया जायगा। इत
कहना यहां अनुचित न होगा कि भक्ति कालकी रचनाएं हमारी ब
मूल्य सम्पत्ति हैं। इनके कारणसे हिंदी संपन्न हुई है। केवल धार्मि
भाव ही नहीं जाग्रत हुए, लोगोंको सांत्वना ही नहीं मिली, कवि
तथा साहित्यका विकास भी हुआ। बल्कि यों कहिये कि का
साहित्य उन्नतिके शिखर पर पहुँचा।

रीतिकाल

भक्तिकालमें हिन्दी-कविता एक प्रौढ़ स्तर पर पहुँच गयी। यद्यपि अनेक कवियोंने भाषा पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना देना चाहिये था किन्तु जहाँ तक भाव तथा भक्तिका सम्बन्ध है उन्होंने कविताको एक सीमा तक पहुँचा दिया। यहां तक कि भक्तिके भाव को व्यक्त करते करते प्राकृत श्रृंगारकी ओर लेखनी झुक गयी और राधा तथा कृष्णका नाम केवल बहाना रह गया। भक्ति कालके अन्तिम चरणमें कृष्ण-काव्यकी प्रधानता थी। कृष्ण और राधाके प्रेम वर्णन तथा हास-विलास और लीलाकी मधुरिमा मुक्तक छंदोंमें ही लिखी जाती थी। उसी समय देशमें राजाओंके आश्रयमें कवि गण रहने लगे और राधा-कृष्णकी भक्तिके स्थान पर राजाओं की वासना वृत्तिके लिये कवि-लोग अपनी प्रतिभाका चमत्कार दिखाने लगे। इस युगमें स्वर्गीय साहित्यकी सृष्टि तो हुई किन्तु काव्यके सूक्ष्म तत्त्वोंकी विवेचना नहीं हुई। लोग कविता लिखनेमें तल्लीन थे काव्यके विश्लेषणमें नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है कि जितने कवि थे उन्हें काव्यके लक्षणोंका ज्ञान नहीं था, बहुतेरे कवि पण्डित थे और उन्हें काव्य शास्त्रकी जानकारी थी, किन्तु वह कवि पहिले थे।

एक बात और ध्यानमें रखनेकी है कि सभी साहित्यमें पहिले साहित्य निर्माण होता है तब आलोचना शास्त्र बनता है। आलोचना शास्त्र बननेके पश्चात् उसके अनुसार कहीं साहित्य निर्माण नहीं होता। हिन्दीमें भी यही हुआ। जब साहित्य और यहाँ साहित्य का अर्थ काव्य ही है, एक आदर्श तक पहुँच गया तब स्वभावतः लोगोंका

ध्यान इस ओर गया। भक्तिकालके अंतिम चरणमें जो कवि उन्होंने काव्य पर कम और काव्य-कलाकी ओर अधिक ध्यान दि और आगे चलकर तो यह प्रथा ऐसी प्रचलित हुई कि लोग अलं या रसके लिये ही ग्रंथ लिखने लगे। इसी कालको हम रीति कहते हैं। रसोंकी परिपुष्टिके लिये शब्दोंके सुन्दर संघटन व प्रयोगको रीति कहते हैं। इसीका दूसरा नाम शैली है। रीति जिसे कहते हैं उस समय कवियोंने रस, विशेषतः शृङ्गार रस, अं कुछ कुछ वीर रसका आश्रय लिया। और उसीके लिए कवि लिखो। इसलिये इस कालको शृङ्गार काल भी कह सकते हैं। वि सब कवियोंका इस समय भी एक दृष्टिकोण नहीं था। इसी री कालको मोटे रूप से कई भागोंमें विभाजित कर सकते हैं।

इन विभेदोंको बतानेके पहिले कुछ उन बातोंका उल्लेख आ श्यक है जो साधारणतः इस कालकी विशेषताएँ हैं। भक्तिका पिछले कवि कृष्ण काव्य ही लिखते थे और वह भी गीतोंमें। इ प्रभाव रीतिकालमें पड़ा। अधिकांश मुक्तक छंद ही लिखे ग इसी सीमाके भीतर कवियोंने अपनी कल्पनाकी उड़ान दिखायी। इनमें ऊँचीसे ऊँची भावनाएँ भी हैं जो मानव हृदयके अंतरा को स्पर्श करती हैं और कहीं कहीं वासनाओंको उत्तेजित करने व कलुषित वृत्तियाँ भी हैं। रीतिकालके अधिकांश कवियोंने ब्रजभ का ही प्रयोग किया। भाषाको खूब माँज कर परिष्कार करके को कांत पदावलीका सर्जन किया। कोमलता और सुकुमारता इस क की विशेषताएँ हैं। छंदोंमें भी प्रौढ़ता आयी। बिहारीने दोहे विकास किया; प्रायः सभी कवियोंने कवित्त और सवैयाको किया। केशव ऐसे कवियोंने अनेक छंदोंका प्रयोग किया। कालके कवि शृङ्गारी कवि थे। मानव जीवनके प्रेमवाले अं इन्होंने पुष्ट किया। संयोग तथा वियोग दोनों अवस्था की

से सूक्ष्म भावोंकी व्यंजना इस कालकी रचनाओंमें पायी जाती है।

मध्यकालीन भारतके संस्कृत कवियों पर संस्कृतके रीति ग्रंथों का बहुत प्रभाव पड़ा और यही प्रभाव हिन्दी कवियों पर पड़ा। संस्कृत कवियोंमें कुछ तो रस-सम्प्रदायवाले थे जो रसको ही कविता की आत्मा समझते थे, कुछ अलंकार संप्रदायवाले थे जो कहते थे कि कविताका प्रधान गुण अलंकार ही है। कुछ लोग रीतिको काव्यकी मुख्य विशेषता बताते थे, कुछ ध्वनिको। हिंदीवालोंने आँख मूँदकर इन्हींकी नकल करनी आरम्भ कर दी। इन कवियोंमें जिन्होंने रीति ग्रंथ लिखे रस तथा ध्वनि-पद्धतियोंका अनुकरण किया। कुछ लोग केवल अलंकारके ही अनुयायी थे। ऊपर कहा जा चुका है कि रसों में शृङ्गार रसकी ही प्रधानता रही है। शृंगार रसमें भी नायिका भेदकी ओर ही लोग अधिक झुके। यह इस समयका प्रभाव था। काव्यमें अतिशयोक्तिका खूब सहारा लिया गया।

इस परम्पराका इतना प्रभाव पड़ा कि वह कवि ही नहीं समझा जाता था जो इस परिपाटी पर ग्रंथ न लिखे। इसका परिणाम यह हुआ कि कविताको एक सीमित धारामें बहना पड़ा। लोगोंने रीति के ग्रथ लिखे। दोहोंमें लक्षण दिये और सवैया अथवा कवित्तमें उदाहरण। इनमें कितने ऐसे थे जो कवि तो अच्छे थे इस कारण कविता अच्छी बन पड़ी किन्तु साहित्यके अच्छे पंडित न होनेके कारण कहीं लक्षणमें भूल कर गये हैं, कहीं जिसका लक्षण है उसका उदाहरण ठीक नहीं बन पड़ा।

इसका एक परिणाम और हुआ कि साहित्यका विस्तृत विकास न होने पाया। भाषाके परिष्कारकी ओर भी लोगोंकी दृष्टि नहीं गयी। भाषाके साथ पूरी स्वतंत्रताका प्रयोग किया गया। न तो

व्याकरण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया न शब्दोंके विषय पर। इ
प्रकारसे चाहा शब्दोंको तोड़ा-मरोड़ा।

रीतिकालमें तीन प्रवृत्तियाँ हम स्पष्ट देखते हैं। एक तो वह
जिन्होंने रीति ग्रन्थ लिखे। संस्कृतके किसी न किसी ग्रन्थका
करण इन लोगोंने किया। इन्हें आचार्यकी पदवी दी जाती
दूसरे वह जिन्होंने कोई लक्षण ग्रंथ नहीं लिखा किंतु रीति पद्ध
ही अनुसार कविता की है और तीसरे वह जिन्होंने प्रेमकी विह
में मुक्तक रचनाएँ की हैं जिनसे प्रेमकी टीस, प्रेमका माधुर्य
मार्मिक भाषामें व्यक्त होता है।

हिंदीमें रीति ग्रंथोंकी परम्परा संवत् १६०० के लगभगसे
किन्तु संवत् १७०० तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं गया। सं
१७०० के लगभग चिंतामणि त्रिपाठीसे रीतिकालका आरंभ मा
चाहिये[1]। इसके पहिलेके सौ सालमें रीतिकालका केवल बीजारो
हुआ क्योंकि विक्रम की सत्रहवीं शतीमें केशवदासने रीति ग्रं
निर्माण किया था यद्यपि उसके बाद पचास सालके लगभग यह
पाटी सुषुप्त ही रही।

केशवदास [१६१२—१६७४]

ओरछा महाराजके भाई इंद्रजीत सिंहकी सभामें रहते थे।
इनका बड़ा मान था। यह सनाढ्य ब्राह्मण थे और इनके घरानेमें सं
के विद्वान होते आये थे। यह स्वयं संस्कृतके पंडित थे और सा
शास्त्रका अच्छा ज्ञान इन्हें था। इनके पहले सं० १५९८ में कृपारामने
पर ग्रंथ लिखा था, और कवियोंने भी श्रृङ्गार रसके ग्रन्थ लिखे

१. पं० रामचंद्र शुक्ल

इन्होंने संस्कृतके अलंकार संप्रदाय वालों[१]का अनुसरण किया। इनका अलंकारका ग्रन्थ 'कविप्रिया' तथा रस पर ग्रंथ 'रसिकप्रिया' है। इसके अतिरिक्त इनके रचे हुए ग्रंथ रामचंद्रिका, वीरसिंहदेव देव चरित, रतन बावनी, विज्ञान गीता, और जहाँगीर जसचंद्रिका हैं।

केशवदास पंडित थे किन्तु कवि न थे। इन्होंने जो कविताकी वह अलंकारके पीछे पड़े रहनेके कारण केवल चामत्कारिक पद्य रचना रह गयी है। हृदय मर्मको छूने वाली रचनाएँ नहीं हैं। उक्तियाँ अधिकांश संस्कृतके ग्रंथोंसे ली हैं। कहीं-कहीं तो अनुवाद विकृत हो गया है। भाषा क्लिष्ट तथा जटिल है। इन्होंने दो प्रबंध काव्य लिखे हैं। वीरसिंह देव चरित तथा रामचंद्रिका। पहलेको तो महाकाव्य कहना ठीक नहीं क्योंकि नायकके चरितका बहुत कम वर्णन है। दूसरेमें कथावस्तुका निर्वाह बिल्कुल नहीं है। जान पड़ता है कि फुटकल पद्य एकत्र करके जोड़े गये हैं। रामकी कथामें जो मार्मिक स्थल हैं उनपर उनका ध्यान ही नहीं गया है। प्राकृत दृश्य तो उनके लिये मानो थे ही नहीं। बीच-बीचमें उपदेश भी दिये गये हैं, वे अनुपयुक्त और अनुचित हैं। साथ ही यह भी जानना चाहिये कि रामचंद्रिकाके संवाद बड़े सजीव हैं, पात्रोंके अनुकूल हैं। कहीं-कहीं छंद सुन्दर तथा मनोहर अलंकारोंसे विभूषित हैं। इनका ग्रंथ रसिकप्रिया प्रौढ़ तथा अच्छी रचना है। रचनामें सरलता है। कल्पनाएँ भी सुन्दर हैं तथा पद विन्यास भी अच्छा है। रतन बावनी वीररसका ग्रंथ है। यह छप्पय छंदोंमें हैं और इसमें वीरताका वर्णन सुन्दर है। केशवकी रचनाओं में सरसता नहीं थी कविकी तन्मयता नहीं थी, किन्तु वह हिन्दीके प्रथम आचार्य थे। उन्होंने हिन्दी जनताके सम्मुख काव्यांगोंका विस्तृत स्वरूप रखा। वह सहृदय भी थे, रसिक भी थे।

---

१. जैसे भामह, उद्भट, दंडी आदि।

रहीम [१६१०-१६८३]

यह अकबरके अभिभावक रहीम खाँ खानखानाके पुत्र
केशवदासके समकालीन थे। इन्होंने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे
उसी परिपाटीमें इनकी कविताएँ गिनी जायँगी। नायिका भेद
शृंगारकी ही इन्होंने रचनाएँ की। कुछ नीतिके दोहे भी लिखे
यह संस्कृत, अरबी, फारसीके विद्वान थे और हिन्दी काव्यसे
परिचित, कवि तथा सहृदय व्यक्ति थे। यह बहुत बड़े दानी
सेनानी भी थे। इनकी रचनामें भी सच्ची अनुभूति भरी पड़ी
इसलिये इनकी अनेक कविताएँ लोगोंकी जबान पर रहती हैं। तु
की भाँति इनका भी अधिकार व्रज तथा अवधी दोनों भाषाओं
था। इनके अधिकांश दोहे हैं किंतु सवैया और छंद भी इन्होंने
हैं। अवधीमें इन्होंने बरवै, नायिका भेद लिखा है जो बहुत मधुर
कुछ संस्कृत श्लोक भी इन्होंने रचे हैं। इनकी रचनाएँ रहीम सत
बरवै नायिका भेद, शृंगार-सोरठ, मदनाष्टक, रासपञ्चाध्यायी
और फुटकल छंद भी हैं। इनकी रचना के नमूने नीचे
जाते हैं:—

(सतसई से)

कमला थिर न रहीम रहि, यह जानत सब कोय,
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय,
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय।
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजरात।

खैर, खून, खांसी, खुसी, वैर, प्रीति, मदपान,
रहिमन दावे न दबैं, जानत सकल जहान।

× × ×

(बरवै)

खीन मलिन विख भैया अवगुन तीन,
पीय कहत विधु वदनी अति मति हीन।
लैके सुघर खुरपिया पियके साथ,
छइवै एक छतरिया बरसत पाथ।

सेनापति—[१६४६-?]

इसी परंपराके कवि सेनापति भी हैं। इन्होंने प्रकृति निरीक्षण बहुत किया था। इनके ऐसा ऋतु वर्णन कम हिन्दी कवियोंने किया है। शब्दावली भी मधुर है। श्लेष, अनुप्रास और पदका लालित्य इनकी रचनाओंमें प्रचुर परिमाणमें मिलता है। फिर भी कहीं कृत्रिमता नहीं झलकती। भाषापर पूर्ण अधिकार है। इनकी रचनाएँ भावुकता पूर्ण, ओजपूर्ण तथा माधुर्य पूर्ण हैं। भक्तिके भी कवित्त इन्होंने लिखे हैं। इनके दो ग्रंथोंका नाम लिया जाता है। काव्य-कल्पद्रुम, तथा कवित्त रत्नाकर। पहिला अप्राप्य है। दूसरा कवित्तों का संग्रह है। भक्तिके भी कवित्त इन्होंने लिखे हैं। इनकी दो रचनाएँ उदाहरण स्वरूप दी जाती हैं:—

सेनापति उनए नए जलद सावनके,
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोय कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात कैहू भांति,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोय कै।

घन सो गगन छायो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मानों रवि गयो खोय कै ।
चारि मास भरि स्याम निसाको भरम मानि,
मेरे जान याही तें रहति हरि सोय कै ॥

\+ + +

काल तैं कराल कालकूट कंठ मांझ लसै,
व्याल उरमाल, आगि भाल सब ही रसैं ।
व्याधिके अरंग ऐसे व्यापि रह्यौ आधौ अंग
रह्यौ आधौ अंग सो सिवाकी बकसीसमें ।
ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,
पैयतौ न बाकी तिल एकौ कहीं ईसमें ।
सेनापति जिय जानी सुधा तें सहस बानी,
जो पै गंगा रानीको न पानी होतौ सीसमें ॥

केशवदासके पश्चात् पचास साठ सालतक रीतिकी रचना नहींके समान थीं । केशव इत्यादिने रीतिकालकी नींव ही डाली वास्तविक रीतिकाल संवत् १७०० से आरम्भ होता है ।

चिंतामणि त्रिपाठी

चिंतामणि कानपुर जिलेके तिकवाँपुरके रहने वाले थे । कहा जाता है कि यह तथा भूषण, मतिराम, जटाशंकर भाई थे । कुछ लोगों का इससे मतभेद भी है । इनकी भाषा मधुर तथा ललित है । इनकी रचनाओंके पढ़नेसे जान पड़ता है कि यह ऊँची श्रेणीके कवि थे । इनके सम्बन्धमें एक महत्त्वकी बात यह है कि केशवदासने जिस परिपाटीका अवलम्बन किया था उसे छोड़कर यह रस परिपाटी पर चले । इसलिये यह दूसरे रीति सम्प्रदायके प्रथम कवि हैं ।

जसवंतसिंह [१६८३-१७२५]

यह मारवाड़के प्रसिद्ध महाराज थे। यह हिन्दीके बड़े मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने अलंकारोंका एक छोटा ग्रन्थ भाषा-भूषण लिखा। इनकी गणना भी हिन्दीके आचार्योंमें होती है।

बिहारीलाल—[१६६०]

यह ग्वालियरके निकट बसुवा गोविंदपुर गाँवमें पैदा हुए थे। माथुर चौबे थे। जयपुरके मिर्जा राजा जयशाहके दरबारमें रहते थे। इनकी रचना केवल एक सतसई मिलती है किन्तु उसीने इतनी ख्याति पायी जितनी कम पुस्तकोंने पायी। कितनी ही टीकाएँ उस पर बन गयी। उन्होंने सुन्दरता तथा प्रेमका बड़ा मनोहर चित्रण किया है। दोहे ऐसे छोटे छन्दमें अलंकारोंकी सफल योजना जैसी बिहारी ने की है किसी कविने नहीं की। कल्पनाकी उड़ान ऊँची है, प्रत्येक दोहेमें रस छलकता है। भावोंसे दोहे भरे हैं, रससे भी पूर्ण हैं तथा अनेक अवस्थाओंका वर्णन भी मनोहर है। कहीं-कहीं कल्पना अस्वाभाविक हो जाती है। श्रृंगारकी दोनों अवस्थाका अच्छा निरूपण है। बहुत-सी उक्तियाँ अनूठी हैं। इनके दोहोंमें नायिका भेद, नखशिख, ऋतु इत्यादि का वर्णन है इसलिये लक्षण ग्रंथ न होनेपर भी रीतिके ही ग्रन्थकार यह माने जाते हैं। इनकी कवितामें बारीकी तो है, कला है, किन्तु आत्मगत भावोंका अभाव है। भाषा इनकी चलती हुई पर साहित्यिक है। व्रजभाषाका बहुत शुद्ध रूप इन्होंने रखा है। शब्दोंमें मनमानी बहुत नहीं की है। इन्होंने नीतिके भी दोहे कहे हैं। इनकी रचनाके उदाहरण यह हैं—

> दृग अरुझत, टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति,
> परति गाँठि दुरजन हिए, दयी नयी यह रीति।

सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मंद समीर,
मन ह्वै जात अजौं वहैं, वा जमुना के तीर।
नासा मोरि नचाय दृग, करी कका की सौंह,
हिऐ मांहि करकत अजौं, वहै-कटीली भौंह।
कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय,
वह खाये बौरात नर, यह पाये बौराय।

मतिराम [१६७४—?]

इनका जन्म कानपुर जिलेमें तिकवाँपुरमें हुआ था। यह र
सिद्ध कवि थे और इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनकी भाषा की म
रता है। कोमल पदावली, प्रसाद गुणसे पूर्ण, इनकी रचनाओं
पायी जाती है। इनकी रचनाओंमें न भाषाकी कृत्रिमता है न भा
की। इनके दो ग्रन्थ विख्यात हैं। रस पर 'रसराज' और अलं
का 'ललित ललाम'। ग्रन्थ सरल तथा विषय स्पष्ट हैं।

—

भूषण

[सं० १६७०–१७७२]

इनका असली नाम ज्ञात नहीं है, इनका जन्म तिकवाँपुर जिला कानपुरमें हुआ था। ये कवि मतिरामके भाई थे, चित्रकूटके सोलंकी राजा रुद्रने इन्हें कविभूषणकी उपाधि दी थी, तभी से ये इसी नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनका अधिक समय महाराज शिवाजीके दरबार में बीता। ये उस युगमें पैदा हुए थे, जब हिन्दीमें रीति ग्रन्थ अर्थात् रस तथा अलंकारकी पुस्तकें कवितामें लिखनेकी प्रथा थी और रचनाएँ अधिकांश शृङ्गार-रसकी होती थीं। इन्होंने छत्रपति शिवाजी का वर्णन किया और कविता वीर रस की थी, किन्तु ढंग वही पुराना रस और अलंकारवाला था। शिवाजीकी मृत्युके पश्चात् यह महाराज छत्रसालके यहाँ रहने लगे थे, इनके दो ग्रन्थ विख्यात हैं—शिवराज-भूषण तथा छत्रसाल-दशक। शिवराजभूषणमें अलंकारोंके लक्षण हैं साथ ही उदाहरणमें शिवाजीकी प्रशंसा है।

इसमें शिवाजीकी राजधानी रायगढ़का वर्णन है। संक्षेपमें कविने रायगढ़के वैभव और उसकी सुन्दरताका वर्णन किया है। यह वर्णन परम्पराके अनुसार ही है। शिवराजभूषण एक छोटी-सी अलंकारकी पुस्तक है। भूषणकी भाषा ब्रजभाषा है, इन्होंने शब्दोंके साथ बहुत स्वतन्त्रताका बर्ताव किया है। इनके संबंधमें यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि जब सारे कवि शृङ्गारकी कविता लिख रहे थे तो

इन्होंने वीर रस लिखकर अलग राह बनायी। इनकी कवितामें ओ
गुणकी विशेषता है।

देव [१७३०-१८०२ ?]

रीतिकालके कवियोंमें देवका स्थान भी महत्वपूर्ण है। ये
और आचार्य दोनों थे। ये इटावेके निकटके रहने वाले थे। इ
५२ या ७२ ग्रन्थ बताये जाते हैं जिनमें २६ का पता लगा है।
किसी एक राजा या आश्रय-दाताके यहाँ नहीं रहे। इनकी कविता
विषय लौकिक प्रेम ही रहा किन्तु बड़े मार्मिक ढंगसे वर्णन कि
गया है। इनका अनुभव बड़ा व्यापक था। इनमें मौलिकता भी
थी और कवित्व-शक्ति भी। इनकी भाषामें भी प्रवाह पाया जा
था किन्तु इन्होंने भाषाको तोड़ा, मरोड़ा बहुत है। अनेक स्थ
पर जो विषय लेकर उठे हैं उसका निर्वाह नहीं कर सके हैं।
बिहारी और देवकी तुलना किया करते हैं। जहाँ तक कलाका सं
है बिहारी देवसे ऊंचे पड़ते हैं। किन्तु इनकी प्रतिभा उनसे अधि
थी। इनकी एक कविता देखिये:—

झहरि झहरि झीनी बूँद है परति मानों
घहरि घहरि घटा घेरी है गगन मैं
आनि कह्यो स्याम मोसों 'चलौ झूलिवेको आज'
फूली ना समानी भई ऐसी हौं मगन मैं
चाहत उठ्यौ ही, उठि गयी सो निगोड़ी नींद,
सोय गये भाग मेरे जागि वा जगन मैं
आँख खोलि देखौं तौ न घन हैं न घनस्याम
वेई छायीं बूँदैं मेरे आँसू ह्वै दगन मैं

भिखारी दास या दास

अवधके प्रतापगढ़ जिलाके रहने वाले थे। यह कायस्थ-कुलमें उत्पन्न हुए और प्रतापगढ़के सोमवंशी राजाके आश्रयमें रहे। इनका कविता-काल संवत् १७८५ से सं० १८०७ तक माना जाता है। इनके नौ ग्रन्थोंका अभी तक पता लगा है। जिनमें काव्य-निर्णय तथा छंदोर्णव विख्यात हैं। यह भी हिन्दीके आचार्य गिने जाते हैं किन्तु इन्होंने भी लक्षणोंमें और लक्षणोंके उदाहरणमें गड़बड़ीकी है। इनका भी मुख्य विषय शृंगार रहा है।

पद्माकर [१८१८-१८९०]

पद्माकरका जन्म बाँदामें हुआ था। यह तैलंग ब्राह्मण थे यह अनेक राजाओंके यहाँ रहे। इनका रसका ग्रंथ जगद्विनोद बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने वीररसकी एक पुस्तक हिम्मत बहादुर विरदावली तथा गंगाकी प्रशस्तिमें एक पुस्तक गंगा लहरी भी लिखी है। राम रसायन नामका एक प्रबन्ध-काव्य भी लिखा है। पद्माभरण नामका एक अलंकार-ग्रंथ भी इन्होंने लिखा है किन्तु प्रबन्ध-काव्यमें इन्हें सफलता नहीं मिली है। इनकी कल्पना बड़ी सजीव है। इनकी शृङ्गार रसकी रचनाओंने बड़ी प्रसिद्धि पायी। वर्णन मधुर तथा स्वाभाविक है। भाषा पर कविका पूरा अधिकार है और कवितामें रसकी धारा बहती है। विषयके अनुसार कहीं ओजसे परिपूर्ण है कहीं सरोवरके जलके समान शांत है, कहीं मधुरिमा लिये हुए है। अनुप्रास प्रियता इनकी प्रसिद्ध है किन्तु वह अस्वाभाविक नहीं है। इनके चित्र बड़े स्वाभाविक और सुन्दर हैं। यह कारीगरी वाले कवि नहीं थे जो व्यर्थका मजमून बाँधकर कविता जोड़नेका प्रयास करके चमत्कार दिखाना चाहते हैं। इनकी कल्पना

सच्ची और स्वाभाविक थी। रीतिकालके यह बहुत उत्कृष्ट कवि हैं। इनकी कविताका परिचय इन उदाहरणोंसे मिलेगा।

कूलनमें, केलिमें, कछारनमें, कुञ्जनमें,
क्यारिनमें, कलिन-कलीन किलकंत है।
कहै पदमाकर परागनमें पौनहूमें,
पाननमें, पीकमें, पलासन पगंत है।
द्वारमें, दिसानमें, दुनीमें, देस-देसनमें,
देखो दीप-दीपनमें दीपत दिगंत है।
बीथिनमें, ब्रजमें, नवेलिनमें, वेलिनमें,
बननमें, बागनमें, बगरो बसन्त है।

जैसे तैं न मोसो कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसे अब तोंसो हौं हूँ नेकहूँ न डरिहौं।
कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तौ,
उमँडि कर तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं।
चलो चलु चलो चलु बिचुल न बीच हीं ते
कीच बीच नीच तौ कुटुम्बको कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गंगाके कछारमें पछार छार करिहौं।

ऊपर कुछही कवियोंके सम्बन्धमें बताया जा सका है और बहुत से कवि भी हो गये हैं जिन्होंने रीतिपर ग्रंथ लिखे हैं और उनकी रचनाएँ उच्च श्रेणीकी हैं। उनमें आचार्यके पदपर तो वे नहीं पहुँच सके हैं किन्तु पद्धति वही रही है। उनमेंसे कुछके केवल नामका उल्लेख किया जा सकता है। कुलपति मिश्र जिन्होंने रस रहस्य लिखा, नेवाज, काव्य सरोजके रचयिता श्रीपति, अली मुहिब खाँ 'प्रीतम', सुधानिधिके लेखक तोष, सैयद गुलामनबी 'रसलीन', दूलह

जिनका कंठाभरण विख्यात है, वेनीप्रवीन, दत्त, ग्वाल तथा व्यंगार्थ कौमुदी और काव्य विलासके लेखक प्रताप साहिके नाम रीतिकारों में प्रमुख हैं।

इसी कालके पिछले भागमें एक दूसरी श्रेणीके कवि हैं जिन्होंने लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखे, न लक्ष्य ग्रन्थ। ये भी शृङ्गारी कवि थे किंतु किसी क्रमसे नायिका भेद या रस या अलंकारके लिये रचना नहीं की। इन कवियोंने प्रेमके रसको छककर मनोहर छंदोंकी रचनाकी हैं। इसीके साथ कुछ प्रबंध काव्य भी बने हैं यद्यपि वे ऊँची कोटिके नहीं हैं, फिर भी कुछ ऐसे हैं जिनकी अवहेलना साहित्यिक दृष्टिसे नहीं की जा सकती, छोटे-छोटे वर्णनात्मक प्रबन्ध भी बने हैं। इसी समय नीति तथा उपदेशके फुटकल पद्य तथा दोहे बनाने वाले भी अनेक कवि हुए हैं। कुछ कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया है। वीर रसके कवि भी हुए हैं और भक्त कवियोंके ढङ्ग पर प्रेम तथा विनयपूर्ण पद्योंके रचयिता भी हुए हैं। बहुत-सी रचनाएँ लोगोंने अपने आश्रयदाताओंकी प्रशंसामें लिखी।

इसी कालमें कुछ गद्यके भी उदाहरण मिलते हैं, व्रजभाषामें। खड़ी बोलीमें भी ग्रंथ लिखे जाने लगे थे। इसी कालमें रीवाँके नरेश विश्वनाथ सिंहने हिन्दीका प्रथम नाटक 'आनन्द-रघुनन्दन' लिखा। इस कालके मुख्य कवियोंके सम्बन्धमें हम साधारण परिचय देते हैं।

सबलसिंह चौहान ने महाभारतकी कथा दोहे-चौपाइयोंमें लिखी है। सीधी सादी भाषामें कथा कही गयी है। कहनेका ढङ्ग अच्छा है। इनका महाभारत साधारण हिन्दी पढ़े लोग गाते हैं। इन्होंने ऋतु सहारका अनुवाद किया और पिङ्गलपर भी एक ग्रंथ लिखा किन्तु वे प्रसिद्ध नहीं हुए।

वृंद—मेड़ता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ़ नो
के गुरु थे। यह सूक्तिकार थे, नीतिके दोहोंकी एक सतसई (
सतसई) लिखी है। रस-सम्बन्धी पुस्तकें भी इन्होंने लिखी हैं।

लाल—गोरे लाल पुरोहितका उपनाम था। यह मऊ (बुन्देलखं
के रहने वाले थे। इन्होंने बुन्देलखण्डके महाराज छत्रसालका व
छत्रप्रकाशमें किया है। दोहों-चौपाइयोंमें ग्रंथ लिखा गया है। ग्र
कई दृष्टियों से उत्तम है। इसमें सारी घटनाएँ सच्ची हैं, इति
की भाँति। प्रबन्ध काव्यके गुण इसमें वर्तमान हैं। भाषा ओज
है, रचना प्रौढ़ है। वर्णन स्वाभाविक है।

घन आनंद—[१७४६-१७९६]

व्रजभाषामें फुटकल शृङ्गारी कवियोंमें घनआनंद सबसे उ
कवि हैं। एक यही कवि हैं जिन्होंने प्रेमके आत्मगत [सबजेक्टि
भावोंको सफलताके साथ व्यक्त किया है। यह कायस्थ थे और दिल्ल
मुगल सम्राट मुहम्मद शाहके दरबारमें रहते थे। कहा जाता
कि यह सुजान नामकी एक वेश्याको बहुत अधिक चाहते थे।
गाते भी बहुत अच्छा थे। एक दिन बादशाहने इनसे गानेके लि
कहा। इन्होंने सुजानकी ओर मुँह और बादशाहकी ओर पीठ
के गाना गाया। बादशाहने रुष्ट होकर इन्हें निकाल दिया। इन्हें
सुजानसे भी चलनेके लिये कहा किन्तु वह न गयी। इन्हें विर
हो गयी। सांसारिक प्रेम अलौकिक प्रेममें बदल गया और यह वृं
बनमें आकर रहने लगे। संवत् १७४६ में नादिर शाहके आक्र
के समय यह मार डाले गये। भगवद्भक्तिमें तन्मय रहा करते
और संयोग तथा वियोगावस्थाके विशेषतः दूसरे भावके बहुत सु
छन्द लिखे हैं। इनकी भाषा बहुत ही मधुर, शुद्ध और प्रौढ़ है। यद्य
इन्होंने भक्ति भावनासे कविता की है इनकी रचना भक्ति नहीं शृङ्

की ही कोटिमें रखी जाती है। प्रेमकी पीरकी मनोमुग्धकारी ऐसी रचना व्रज भाषामें करनेवाला अन्य कवि नहीं हुआ है।

इनकी रचनाओंमें बाह्य वर्णन कम है, केवल हृदयके अंतरतम भावोंका सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचन, विशेषकर विप्रलम्भ अवस्थाका, किया गया है। विरोधाभास इस कविकी विशेषता है। इस अलंकारका सहारा इन्होंने बहुत लिया है। भाषापर इनका बड़ा अधिकार था। भाषामें बड़ा प्रवाह है फिर भी सरलता है। कहीं जटिलता नहीं आने पायी है। इनके छंदोंमें बड़ी मिठास है देखियेः—

परकारज देहको धारे फिरौ, परजन्य, जथारथ ह्वै दरसौ
निधि नीर सुधाके समान करौ, सबही बिधि सुंदरता सरसौ
घनआनंद जीवन दायक हौ, कबौं मेरियो पीर हिये परसौ,
कबहूँ वा बिसासी सुजानके आंगन मो अंसुवानको लै बरसौ

× × ×

एरे वीर पौन, तेरो सबै ओर गौन, वारि
तो सों और कौन मनै ढरकौही बान दै
जगतके प्रान, ओछे बड़ेको समान, घन—
आनंद निधान सुखदान दुखियान दै
जान उजियारे गुन-भारे अति मोहि प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै
बिरह-बिथाको मूरि आंखिनमें राखौं पूरि
धूरि तिन पायनकी हा हा, नैकु आनि दै

सूदन—भरतपुरके महाराजा बदनसिंहके पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमलके यहाँ रहते थे और उन्हींकी प्रशंसामें सुजान चरित्र लिखा है। यह बड़ा ग्रंथ है और सब बातोंका विस्तारसे वर्णन है।

वस्तुओंकी सूची गिनाते चले गये हैं अपनी रचनामें। वीर रस अच्छा परिपाक इनके ग्रंथमें हुआ है। भाषामें मनमाना प्रयोग किया है। इनका रचना काल सं० १८२० के लगभग है।

बोधा—व्रजभाषाके शृङ्गारी कवियोंमें यह भी अच्छे कवि थे। इनका कविता काल १८३० से १८६० तक है। इन्होंने विरह वारीश और इश्कनामा लिखा। इनमें फुटकल छंद ही हैं। भाषा चलती पर सुन्दर है। प्रेमका अच्छा निरूपण इन्होंने किया है।

ठाकुर [१८२३-१८८०] नामके तीन कवि हो गये हैं। बुंदेलखंड वाले ठाकुरकी कविता प्रौढ़ और सुन्दर है। यद्यपि तीनोंकी रचनाएँ मिलजुल गयी हैं। भाषापर विचार करनेसे बुंदेलखंडी ठाकुरकी रचना हम पहचान लेते हैं। जैतपुर नरेशके यहाँ रहते थे। इन्होंने बोलचालकी सीधी भाषामें प्रेम भरी उमंग बड़ी रसीली, मधुर रचनाकी है। इनकी रचनाओंमें लोकोक्तियोंका प्रयोग बहुत हुआ है। इनकी सवैया बड़ी सुन्दर होती है। देखिये

> अपने अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेहकी नाव पै री
> अंगनानमें भींजत प्रेम भरे, समयो लखि मैं बलिजाँव पै री
> कहै ठाकुर दोउनकी रुचि सों रंग ह्वै उमड़े दोऊ ठाँव पै री
> सखी, कारी घटा बरसै बरसाने पै, गोरी घटा नंद गाँव पै री

दीनदयाल [१८५६-१६१५]

यह काशीके रहनेवाले गोसांई थे। इनकी अन्योक्तियां बहुत प्रसिद्ध हैं। भाषा प्रांजल महावरेदार तथा व्यवस्थित है। इन्होंने श्लेष तथा यमक अलंकारोंका अच्छा प्रयोग किया है कवितामें कला है, मर्म स्पर्शिनी भावनाएँ भी हैं।

इसके अतिरिक्त इस कालमें सैकड़ों कवि हो गये हैं जिनमें अनक कवियोंकी रचनाएँ सुन्दर हुई हैं। इन्होंने अपनी प्रेमपूर्ण कविताओंसे हिंदी का भंडार भरा है। इनमें साधारण भाषामें नीति कहनेवाले वैताल, प्रेममें दीवाने आलम, रीवाँ नरेश विश्वनाथ सिंह जिन्होंने बत्तीस पुस्तकें लिखीं, भक्त कवि नागरी दास जो कृष्णगढ़ नरेश थे और गद्दी छोड़कर वृंदाबनमें आ बसे, बख्सी हंसराज, विख्यात कुंडलिया कहनेवाले गिरधर कविराय, नैषधके रचयिता गुमान, चंद्रशेखर, अनुप्रासके प्रेमी पजनेस, भारतेंदुके पिता गिरधरदास, अयोध्या नरेश द्विजदेवके नाम उल्लेखनीय हैं। रीतिकाल स्थूल रूपसे संवत् १६०० तक है, इसके पश्चात् हिन्दीमें नया प्रवाह आता है।

हिन्दीमें गद्यका आगमन

प्रत्येक साहित्यमें पहिले पद्यकी रचना ही आरम्भ होती समाजका क्षेत्र जब विस्तृत होता है, जब समाजमें व्यावहारि बढ़ जाती है तब गद्यका जन्म होता है। कुछ लोगोंका यह भी है कि जब बौद्धिक विकास होने लगता है तब गद्यका जन्म होता और ज्यों ज्यों मानव समाजमें बौद्धिक स्तर ऊँचा होने लगत पद्यका स्थान गद्य लेता जाता है। यह केवल आंशिक सत्य हो स है। कविता मानवताकी भावनाओंपर निर्भर है और जब तक मनु हृदय है कविता लोप नहीं हो सकती।

मनुष्य सदासे बोलता गद्य में ही है। मानव समाजमें जब व हारिकता बढ़ जाती है, विचारोंके आदान-प्रदानकी आवश्य बढ़ने लगती है तब गद्य साहित्यके रूपमें आता है। हिन्दीमें आरम्भिक गद्यके उदाहरण प्राप्त होते हैं वे ब्रजभाषाके हैं। गो पंथियोंने कुछ ग्रन्थ अपने सम्प्रदायके प्रचारके लिये लिखे हैं। ग्रन्थोंमें कभी-कभी निर्माणकाल भी लिखा है। सबसे पुराना संवत् १००० का मिलता है।

इसके पश्चात् जब कृष्ण-भक्ति शाखाका उदय हुआ तबके के ग्रंथ मिलते हैं। वल्लभाचार्यके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथने शृं मंडन नामका एक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्यमें लिखा था। इसकी शैली अ स्थित-सी है। फिर हमें विट्ठलनाथके पुत्र गोकुलनाथकी लिखी पुस्तक मिलती है। चौरासी वैष्णवोंकी वार्ता। इस पुस्तकमें गोकुलनाथकी कई स्थानपर प्रशंसा की गयी है इससे जान प

है पुस्तक उनकी लिखी नहीं है, उनके किसी शिष्यने लिखी होगी। इस पुस्तककी भाषा पहिलेसे परिमार्जित है। इसका रचना-काल सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध हो सकता है। इसकी बानगी देखिये।

एक समय वैष्णव दस पन्द्रह मिलके श्री आचार्यजी महा प्रभूनको दर्शनको अड़ेलकों जात हुते सो जा ग्राममें कृष्णदास रहते ता ग्राममें आये सो कृष्णदासके घर आये तो कृष्णदास तो घर हुते नाहीं और कृष्णदासकी स्त्री घर हुतीं……

यद्यपि इसमें पुनरुक्ति दोष है, शिथिलता है फिर भी पहिलेके गद्यसे अच्छा है।

इसके पश्चात् औरङ्गजेबके समयकी लिखी पुस्तक मिलती है। वह भी कृष्ण सम्प्रदायकी है। वह है 'दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता।' इसका गद्य भी पहिलेसे अच्छा है। बोल-चाल की भाषा में इनकी रचना हुई, किसी शैली विशेषके प्रदर्शन के लिये नहीं। इसमें फारसीके शब्द भी स्वतन्त्रता-पूर्वक लिये गये हैं। इसका उदाहरण यह है—

सो एक दिन नन्ददासजीके मनमें ऐसी आयी। जो जैसे तुलसीदासजीने रामायण भापा करी है सो हमहूँ श्रीमद्भागवत भाषा करैं। ये बात ब्राह्मण लोगनने सुनी तब सब ब्राह्मण मिलके गोसाइँजीके पास गये। सो ब्राह्मणोंने विनती करी…

यह गद्य आजकलकी भाषाके लिये राह बनानेके लिये बहुत उपयुक्त था।

संवत् १६६० में भक्त नाभादासने अष्टयाम नामका एक ग्रन्थ गद्य में लिखा जिसमें रामचंद्रकी दिनचर्या है। इसके अतिरिक्त और भी छोटी-मोटी पुस्तकें व्रजभाषा गद्यकी मिलती हैं जैसे संवत् १६८० के लगभग वैकुंठमणिका लिखा अगहन महात्म्य, वैशाख महात्म्य, संवत्

१७६० का एक नासिकेतोपाख्यान (ब्रजभाषामें), संवत् १७६७ की लिखी सुरति मिश्रकी वैताल-पचीसी (ब्रजमें) तथा संवत् १८५२ का लाला हीरालालकी लिखी आइने अकबरीकी भाषा वचनिका'।

इन रचनाओंसे यह स्पष्ट होता है कि गद्य लिखनेकी कोई परिपाटी नहीं थी। इससे गद्यका कुछ विकास नहीं हुआ। ब्रज भाषाका गद्य जहाँका तहाँ रह गया। गद्यमें पुस्तकें या तो धार्मिक संप्रदाय वाले प्रचारके लिये लिखते थे या संस्कृत पुस्तकोंकी टीका के लिये। किंतु भाषाके परिष्कारके लिये न उन्होंने प्रयत्न किया न ध्यान दिया।

खड़ी बोली का गद्य

पहले अध्यायमें बताया गया है कि संयुक्तप्रांतके पश्चिमी जिलोंके आस-पास तथा दिल्लीके निकट बहुत प्राचीनकालसे खड़ी बोली लोग बोलते चले आये हैं। मुसलमानोंके संपर्कके पश्चात् उसमें विशुद्ध हिंदीके अतिरिक्त फारसीके शब्द भी मिलने लगे थे। खुसरोकी कविताके उदाहरणमें हम खड़ी बोलीका प्रयोग देख चुके हैं। इस प्रकार चौदहवीं शतीमें ही खड़ी बोलीका साहित्यमें प्रयोग होने लगा था। औरंगजेबके शासन-कालमें कवितामें शायरी आरंभ हो चुकी थी और हिंदीकी खड़ी बोलीके ही आधारपर उर्दू खड़ी होने लगी।

मुगल साम्राज्यके ध्वंस होनेपर दिल्लीसे लोग भारतवर्षके अन्य भागोंमें बिखरे। इन लोगोंमें व्यापारी, रोजगारी, सरकारी कर्मचारी, सैनिक सभी थे। इन लोगोंकी बोली खड़ी बोली ही थी। अपने रस्मों रिवाजके साथसाथ ये अपनी भाषा भी ले गये जो सारे देशमें इस प्रकारसे फैली। कवितामें तो इसका प्रयोग कबीर आदिने किया ही है गद्यमें भी कहीं कहीं हुआ है जैसे अकबरके राजकवि गंग कविने अपनी एक पुस्तक 'छंद बरननकी महिमा' गद्यमें लिखी।

रामप्रसाद निरंजनीने संवत् १७९८ में भाषा योगवाशिष्ठ साफ खड़ी बोलीमें लिखा। इनकी भाषा कितनी व्यवस्थित है।

"मलीन वासना जन्मोंका कारण है। ऐसी वासनाको छोड़ कर जब तुम स्थिर होंगे तब तुम कर्त्ता होते हुए भी निर्लेप रहोगे। और हर्ष शोक आदि विकारोंसे जब तुम अलग रहोगे तब वीतराग, भय क्रोधसे रहित रहोगे……"

दौलतरामने संवत् १८ ८ में पद्मपुराण का खड़ी बोलीमें अनुवाद किया। यह मध्य प्रदेशके निवासी थे।

इन रचनाओं से यह पता चलता है कि उन लोगोंकी धारणा ठीक नहीं है जो कहते हैं कि खड़ी बोली उर्दू का ही रूप है और उर्दू-के विकासके पचशत् इसका जन्म हुआ है और मुसलमानोंने इसे जन्म दिया है। वास्तविकता यह है कि यह बोली बहुत पहलेसे बोली जाती थी, कुछ लोगोंने इसमें लिखा भी। पीछेसे मुसलमानोंके संपर्क से इसमें फारसी शब्दावलीका समावेश हुआ। धीरे-धीरे एक अलग शैली इसकी हो गयी जिसे उर्दू कहने लगे। हिंदी-खड़ी बोलीको छोड़कर मुसलमान इसी शैली को अपनाने लगे। हिंदू पहली बोली में बोलते लिखते थे।

विक्रम उन्नीसवीं शतीका अंत होते-होते अंग्रेजोंका शासन इस देश में जम गया था। उन्होंने स्पष्ट रूपसे देख लिया था कि शिष्ट समाजकी बोली उत्तरी भारतमें खड़ी बोली है, इसीलिये उन्होंने इस बोलीमें पुस्तकें लिखवानेकी आवश्यकता समझी। कलकत्तेमें अंग्रेजों ने संवत् १८६० में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। उसमें हिंदी गद्यमें पुस्तकें लिखानेकी व्यवस्था की गयी। इसके पहले हिंदी गद्यमें खड़ी बोलीमें पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं।

इस समय चार महानुभाव खड़ी बोलीके गद्यके निर्माणमें अग्रसर हुए। दो तो स्वतंत्र थे। मुंशी सदासुख लाल जिनका उपनाम

नियाज़ था, दिल्लीके रहनेवाले सैय्यद इंशा अल्ला खां, तथा दो फोर्ट विलियमके सरकारी नौकर लल्लूजी लाल तथा सदल मिश्र। फोर्ट विलियमके हिंदी-उर्दू अध्यापक डाक्टर जान गिल क्राइस्ट थे। उन्हींके प्रयत्नसे हिंदी तथा उर्दूमें पुस्तकें लिखाई गयीं।

गद्य साहित्यका व्यावहारिक अंग है। इसकी उन्नति उसी समय होती है जब आपस के व्यवहारमें एक दूसरेके पास अपने मनोभाव पहुँचानेकी आवश्यकता पड़ती है। अंग्रेजी गद्यकी भी इसी प्रकार उन्नति हुई है। लैटिनसे जब बाइबिलका अंग्रेजीमें अनुवाद हुआ गद्यको बड़ा प्रोत्साहन मिला। भारतवर्षमें भी ईसाई धर्मके प्रचारके लिए बहुतसे मिशनरी आ गये थे। जनतामें ईसाई धर्मके प्रचारके लिये जनता की भाषा में बाइबिल का अनुवाद आवश्यक था। ईसाई मिशनरियोंने हिन्दीमें बाइबिलका अनुवाद प्रकाशित किया। इससे भी पता चलता है कि उस समय जनता की भाषा हिन्दी थी, उर्दू नहीं। १८६६ में स्वयं पादरी विलियम कैरे ने 'न्यू टेस्टामेट' का अनुवाद किया और और लोगोंने मिलकर १८७५ में सम्पूर्ण बाइबिलका अनुवाद किया। जो भाषा हिन्दू जनता बोलती थी वही इसकी भाषा है। संस्कृतके तत्सम तथा तद्भव शब्द, ठेठ बोलीके शब्द इसमें प्रयोगमें लाये गये हैं। यद्यपि कहीं-कहीं ब्रजभाषाके गद्यकी शैलीका भी अनुकरण किया गया है जैसे करनेवालेके स्थानपर 'करने हारे' तकके स्थानपर 'लौं' इत्यादि। जहाँ तक हो सका है अरबी फारसीके शब्द नहीं आये हैं।

मिशनरियोंके भी स्कूल खुले, सरकारकी ओरसे भी स्कूल खुले। इसमें शिक्षाके लिये हिन्दीकी पुस्तकोंकी आवश्यकता पड़ी। ईसाइयोंकी ओरसे छापाखाने खुले, संस्थाएँ बनी और अनेक विषयों पर गद्यमें पुस्तकें लिखी गयीं। इस प्रकारसे धर्म प्रचारने परोक्ष रूपसे गद्य साहित्यका भांडार किसी सीमा तक भरा।

ईसाई धर्मके प्रसारसे हिन्दू लोग चौकन्ने हो गये और उसका सामना करनेका प्रयत्न करने लगे। बंगालमें ब्रह्म समाज स्थापित हो गया। राजाराम मोहन रायने संवत् १८७२ में वेदांत सूत्रोंका हिन्दी-में भाष्य किया और 'बंगदूत' नामका एक पत्र भी १८८६ में हिन्दीमें निकाला जिसकी भाषा अच्छी हिन्दी थी, यद्यपि बंगलापन लिये हुए।

किसी भाषाकी प्रगतिमें और उन्नतिमें भी समाचार पत्रोंका बड़ा हाथ रहता है। अङ्गरेजी भाषाकी उन्नतिमें विशेषतः निबंधोंकी प्रगतिमें आरंभिक कालमें वहाँ के पत्रों ने बड़ काम किया। यहाँ भी हिन्दी गद्यको हिन्दी पत्रोंकी सहायता मिली। यह पत्र थोड़े दिनों तक जिये किन्तु इनसे प्रवाह में कुछ गति तो आयी। उन्होंने आगेके लिये राह बनायी। कानपुरसे पंडित जुगुल किशोरने 'उदंत मार्तण्ड' निकाला जो हिन्दीका पहला समाचारपत्र माना जाता है।

दूसरा पत्र राजा शिव प्रसादने संवत् १९०२ में बनारससे 'बनारस अखबार' निकाला। इस पत्रकी भाषा उर्दू थी, लिपि देव-नागरी। संवत १९०७ में कई सज्जनोंके उद्योगसे बाबू तारा मोहन मित्रने 'सुधाकर' नामका पत्र निकाला। इस पत्रकी भाषा व्यवस्थित हिन्दी थी किन्तु पत्र अधिक दिनों तक नहीं चला। संवत् १९०९ में आगरेसे 'वुद्धि प्रकाश' निकला जिसकी भाषा अच्छी थी।

संवत् १९१४ में प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम हुआ। पहलेसे ही सरकारी तथा मिशनरियों के स्कूल खुल गये थे। और जैसा ऊपर बताया गया है स्कूलोंमें हिन्दी पाठ्य पुस्तकोंकी आवश्यकता पड़ी।

राजा शिवप्रसाद [१८८०—१९३२]

काशीके रहनेवाले थे। यह सरकारी कर्मचारी थे। १९१३ में यह स्कूलोंके इंसपेक्टर बनाये गये। यह हिन्दीके विद्वान थे और हिन्दी में इन्होंने अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखीं। इनकी भाषा सरल हिन्दी है और फारसी शब्दोंकी ओर झुकाव है। नागरी लिपिमें 'आम-

फहम' भाषा लिखना आपने आरम्भ किया। इन्होंने हिन्दी गद्यको एक स्वरूप दिया।

राजा लक्ष्मणसिंह—[१८८३–१९५३]

आगराके निवासी थे। सरकारी विभागमें डिपुटी कलक्टर थे। अधिकांश तो इन्होंने कविता ही लिखी है किन्तु १९१८ में इन्होंने 'प्रजाहितैषी' नामका पत्र निकाला जिसकी भाषा परिष्कृत खड़ी बोली थी। इससे भी अधिक इन्होंने गद्यमें एक परिष्कृत शैली सामने रखी। १९१९ में इन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलका अनुवाद किया जिसकी भाषा सरल होते हुए संस्कृत निष्ट और मधुर है। राज़ा शिव प्रसादकी भाषा-से जो लोग अप्रसन्न थे उनके लिये इसने प्रतिक्रियाका कार्य किया। लोगों-को इनकी पुस्तक बहुत रुची। इन्होंने रघुवंशका भी गद्यानुवाद किया। इनका गद्य बड़ा प्रांजल है।

स्वामी दयानंद सरस्वती—[१८८१-१९४०]

गुजरात प्रांतके रहने वाले थे। गुजराती ब्राह्मण थे। इन्होंने विदेशी सामाजिक तथा धार्मिक आक्रमणोंके विरोधमें भारतीय संस्कृतिके संरक्षणके लिये आर्यसमाजकी स्थापनाकी। हिन्दीको इन्होंने अपनाया, उसीमें व्याख्यान देते थे, उसी भाषामें इन्होंने अपना विख्यात ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिखा। यह संस्कृत मिश्रित प्रांजल हिन्दी लिखते थे। गद्य ओजपूर्ण होता था, व्यंगका भी पुट होता था। व्याख्यान और वाद-विवादके कारण इन्होंने एक विशिष्ट शैलीको जन्म दिया।

इन लेखकोंके साथ हिन्दीका एक युग समाप्त होता है। गद्यका आरंभ करके इन लोगोंने हिन्दी भाषाका बड़ा उपकार किया। अब हिन्दी-रंग-मंचपर एक नये सूत्रधारका प्रवेश होता है जिसने वर्त्तमान हिन्दी साहित्यके स्वागतका गीत गाया।

भारतेंदु युग

इस युगका विशेष महत्व है। इस युगमें हिंदी साहित्य सरिता अनेक धाराओंमें प्रवाहित हुई। इतना ही नहीं यह युग शक्ति लिये आया जिसमें हिंदीको गति मिली। अभी तक तो कविता ब्रजभाषामें ही होती रही जैसा हम पाँचवें अध्यायमें लिख आये हैं, किंतु गद्यपर भी कुछ न कुछ ब्रजभाषाका प्रभाव था ही। राजा शिवप्रसादने कुछ परिष्कार किया परन्तु उनकी भाषामें उर्दूपन अधिक था इसलिये वह भाषा भी हिंदीमें पच न सकी। गद्यकी जो विशेषता है, सरलता गंभीरता, अनेक रूपता वह इसी युगसे प्रारम्भ हुई। अभी तक साहित्य और साहित्यकारी एक विशेष समुदाय तक ही सीमित थी। जनतासे उसका विशेष सम्पर्क नहीं था। भारतेंदुके प्रयत्नोंसे उसे जनताका साहचर्य प्राप्त हुआ।

अंग्रेजी शिक्षा आरम्भ हो गयी थी। वातावरणमें बहुत परिवर्तन हो गया था। माध्यमिक युगकी रूढ़ियाँ टूट रहीं थी दूसरी ओर पश्चिमकी ओर लोग झुकने लग गये थे। पश्चिमके साहित्यका रस भी लोगोंको मिल गया था। देशकी दूसरी भाषाओं पर इस साहित्यका प्रभाव भी पड़ रहा था। भारतेन्दुने साहित्यकी गतिको एक विशेष पथकी ओर मोड़ा जो नवीनताका मार्ग था। भाषाके स्वरूपको इन्होंने स्थिर किया। यह स्वयं उच्चकोटिके लेखक तो थे ही इनके प्रभावसे और भी लेखक तैयार हो गये जिन्होंने नवीन दृष्टिकोणसे गद्य और पद्यकी रचनाएँ की। इसी युगमें नाटकका जन्म हुआ। यद्यपि दो-एक नाटक पहले लिखे जा चुके थे। उपन्यास और कहानीका जन्म काल भी यही है। ऐतिहासिक पुस्तकें भी लिखी

गयीं और जीवन सम्बन्धी अनेक विषयोंपर प्रौढ़ लेख लिखनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें हुई। भारतेंदुके पहिले हिन्दी पत्रोंका जन्म हो चुका था किन्तु उसमें जीवनोपयोगी न तो उतने लेख होते थे, न उनकी भाषाका स्वरूप ठीक था। इस युगमें अनेक हिन्दीके पत्र तथा समाचार-पत्र निकले जिनके कारण लेखकोंको प्रोत्साहन मिला। गद्यका जो स्वरूप भारतेंदुने स्थिर किया था वह और निखरा। हास्य, विनोद, व्यंगसे लेकर गम्भीर, दार्शनिक तथा जीवनोपयोगी निबन्ध और लेख लिखे जाने लगे। बंगलामें उपन्यास लिखे जाने लगे थे और उसकी देखा-देखी हिन्दीमें भी मौलिक उपन्यासोंका जन्म हुआ। आलोचनाका सूत्रपात भी इस युगमें हो चला, यद्यपि जैसा स्वाभाविक था, वैज्ञानिक ढङ्गसे आलोचना पीछे आरम्भ हुई।

भारतेंदु प्राचीन और नवीन युगकी संधिपर खड़े थे। इसलिये इस युगमें प्राचीनताका होना अवश्यम्भावी था। उन्होंने भी कविता खड़ी तथा ब्रज दोनोंमेंकी। और जो कवि इस युगमें हुए उन्होंने कविता ब्रजमें हीकी। किन्तु इस युगकी महत्ता कविताके लिये नहीं है। गद्यकी प्रौढ़ता, नाटकके जन्म तथा साहित्यकी एक नवीन धारामें प्रवाहके लिये है। इस युगके साहित्यकारोंका संक्षिप्त परिचय हम देते हैं।

भारतेंदु

भारतेंदु हरिश्चन्द्रका जन्म काशीमें संवत् १६०७ में हुआ। वह धनी कुलमें पैदा हुए थे। पढ़ाई-लिखाई तो साधारण हुई क्योंकि पिताकी मृत्युके कुछ ही दिनोंके पश्चात् उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। किन्तु स्वयं हिंदी, संस्कृत, बँगला, उर्दू और अंग्रेजी घरपर पढ़ कर अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्होंने बंगालकी यात्राकी जहाँ उन्होंने बंगला भाषाके विषयमें ज्ञान प्राप्त किया और यह देखा कि

उसपर अंग्रेजीका क्या प्रभाव पड़ा है। उनके जन्मके कुछ ही पहले भारतको स्वतंत्र करनेकी पहली लड़ाई, जिसे अंग्रेज गदर कहते हैं, हो चुकी थी। विदेशी राजको उखाड़ फेंकनेकी शक्ति भारतवासियोंमें न थी किन्तु उसके बोझका अनुभव सभीको हो रहा था। स्वाधीनताकी प्राप्तिकी बातें करनेमें लोग हिचकते थे किन्तु मनमें सभीके स्वतंत्रताकी भावना तरंगें मार रही थी। भारतेंदुके मनपर भी इसका प्रभाव पड़ा। संपत्तिके साथ स्वतंत्र प्रकृति मिल गयी और उन्होंने खूब धन उड़ाया। इतना उड़ाया कि अपने पास कुछ न रह गया। जो दिवालीमें इत्रका दीप जलाता रहा उसके पास डाकका टिकट भेजनेके लिए पैसे न थे। कवियों और साहित्यकारोंको सदा पुरस्कृत करते रहे। ३५ सालकी ही अवस्थामें मृत्यु हो गयी किंतु उतनी ही अवस्थामें इतना लिख गये जो पचासों वर्षमें बहुतोंने नहीं लिखा।

वह वल्लभ संप्रदाय के माननेवाले थे इसलिए उनको कविताओंमें राधा और कृष्णकी भक्तिका होना स्वाभाविक था। इसलिए व्रज भाषापर उनका अनुराग था और उनकी कविता प्रायः व्रजभाषामें ही हुई है। किन्तु पुराने व्रजभाषाके कवियोंसे उन्होंने अलग मार्ग बनाया। पुराने कवि रीति ग्रंथ लिखा करते थे, वह अलंकार, नायिकाभेद, रसके उदाहरणके लिए कविता करते थे, जिसके कारण कविताकी स्वाभाविकता बहुत कुछ नष्ट हो जाती थी। भारतेन्दुने रीति-ग्रंथ नहीं लिखा। मनमें आये भावोंके अनुसार कविताएँ लिखीं इसीसे उनकी कवितामें स्वाभाविकता है। रचनाएँ मुक्तक हैं और अधिकांश शृंगार रस की हैं। भाषामें भी उन्होंने बहुत परिवर्तन किया। यद्यपि व्रजभाषाका प्रयोग उन्होंने किया, पुरानी व्रजभाषामें नये और सरल शब्दोंको लाकर उसे सबके समझने योग्य बना दिया। पुरानी परिपाटी भी उन्होंने तोड़ी। केवल वाह्य जगत (आबजेक्टिव) वर्णन नहीं किया। अंतर्जगत (सबजेक्टिव) भावोंको भी लिखा। इसीसे

उनकी रचनाएँ प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त वह इस युगके पहले कवि हैं जो नयी विचार-धाराओंको अपनी रचनामें जगह देते हैं। देशकी दशा, समाजकी कुरीतियाँ, हमारी दुर्बलताएँ, सामयिक समस्याएँ उनकी कविताओंमें आती हैं। खड़ी बोलीमें भी इन्होंने कविताकी किंतु जान पड़ता है वह उन्होंने प्रयोग मात्र किया।

उन्होंने 'कवि वचन सुधा' पत्रिका प्रकाशितकी जिसमें नवीन तथा प्राचीन काव्य प्रकाशित होते थे। इसी पत्रिकाका नाम बादमें उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' कर दिया। इसी पत्रिका द्वारा वर्तमान हिंदी गद्यका रूप प्रकट हुआ। इसमें भारतेंदु अधिकांश स्वयं लिखते थे। और भी लोग गद्य-पद्य लिखते थे। पद्यकी भाषा व्रजभाषा ही रही यद्यपि पहलेसे बदली हुई। गद्यकी भाषा बहुत सुधरी हुई। यह जान लेना आवश्यक है कि अनजानमें ऐसा नहीं हो गया। हिंदी गद्यको सुव्यवस्थित तथा परिष्कृत जानबूझकर बनाया गया क्योंकि वही समयके अनुकूल था।

उनके गद्यकी भाषा सरल, मुहावरेदार होती थी। न तो संस्कृतके शब्दोंसे लदी रहती थी, न बँगला या और भाषाओंके शब्दों और मुहावरोंको लेकर उसे कुरूप बनाते थे। अंग्रेजीका भी अनुवाद छपता था किंतु भाषा अपने साँचेमें ढाली जाती थी। भारतेंदुका गद्य उनके नाटकोंसे आरम्भ हुआ। उनके गद्यकी दो शैलियाँ मानी गयी हैं। एक भावुकताकी शैली, दूसरी गम्भीरताकी। भावुकताकी शैलीमें चलती, बोल-चालकी भाषाका प्रयोग वह करते थे। सभी सरल तथा चलते शब्दोंको वह चाहे किसी भाषाके हों व्यवहारमें लाते थे।

जहाँ गम्भीरता आती है वहाँ उनकी भाषामें संस्कृतके शब्द अधिक हो जाते हैं और भाषामें बोझ आ जाता है।

किन्तु भारतेन्दुकी वास्तविक शैली वही है जिसका उदाहरण पहले दिया गया है।

भारतेंदुके साहित्यका मुख्य-स्वरूप नाटक ही था। इसीके द्वारा उन्होंने राजनीतिक विचारों, देश-प्रेम, सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियोंपर प्रकाश डाला है। उन्होंने नाटकोंमें जीवनके अनेक क्षेत्रोंसे सामग्री ली है। वह ऐसे समय साहित्यकी रचना कर रहे थे जब एक युग बीत चुका था और एक नया युग आ रहा था। इसलिए उनके नाटक भी न तो बिलकुल पुराने हैं, न नितान्त नवीन। प्राचीन परिपाटीके अनुसार उन्होंने नटी और सूत्रधार रखा। किन्तु संवाद गद्यमें रखा। प्रायः उनके नाटक पद्यमें नहीं हैं। चरित्र चित्रणके लिए इनके नाटकोंमें स्थान नहीं क्योंकि अधिकांश पौराणिक आख्यान या ऐतिहासिक नाटक हैं जिनकी सीमा बनी है। उनके मौलिक नाटक हैं वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'—यह प्रहसन है जिसमें धर्मके नाम पर चले हुए पाखंडोंका रूप दिखाया गया है। 'चंद्रावली', शृङ्गार रस-का नाटक है और इसमें आदर्श प्रेमका स्वरूप दिखाया गया है। 'विषस्य विषमौषधम्'में भारतीय राजाओंकी राजनीतिक परिस्थितिका वर्णन है। 'भारत दुर्दशा'में परतन्त्र भारतका मनोरंजनके ढंगसे निरूपण किया गया है। 'नीलदेवी' ऐतिहासिक नाटक है जिसका संबंध पंजाबके हिन्दू राजासे है जिसपर मुसलमानोंने चढ़ाईकी थी। 'अंधेर-नगरी' विनोद व्यंग-पूर्ण नाटक है जिसमें ऐसे राज्यका वर्णन है जहाँ सब वस्तुएँ एक ही भाव बिकती हैं। 'प्रेम-योगिनी' नाटकमें धार्मिक तथा सामाजिक जीवनमें जो पाखंड और धूर्तता हमारे बीच घुस गयी है वही दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अनेक नाटकोंका अनुवाद भी किया। मुद्राराक्षस, विद्यासुन्दर पाखण्ड बिंडबन, धनंजय विजय, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी अनुवादित हैं।

कविताके क्षेत्रमें भारतेंदुने ब्रजभाषाका ही प्रयोग किया। किन्तु रीतिकालके शृंगारिक कवियोंकी ही परम्परापर वह नहीं चले।

उनकी रीतिका भी निर्वाह किया और नये विचारोंका भी समावेश किया। यही भारतेंदुकी विशेषता है। संधिकालके नेताको जिस प्रकार होना चाहिए, वही इन्होंने किया। नये विचारोंको अधकचरे रूपमें उन्होंने नहीं प्रकट किया। ऐसा जान पड़ा कि उन्होंने अपनेमें पचा लिया। राधाकृष्णका प्रेम भी है, हृदयकी आंतरिक व्यथाएँ भी हैं, देशकी अवस्थापर आंसू भी हैं और समाजके ढोंगकी खिल्ली भी उड़ायी गयी है।

ऊपर बताया गया है कि भारतेंदुके समय अनेक कवि और लेखक हुए। भारतेंदुमें यह गुण था कि लेखकों तथा कवियोंको सदा प्रोत्साहन देते रहते थे। केवल धनसे ही नहीं पुरस्कृत करते थे; लोगोंसे अपने पत्रके लिए लिखवाते थे, गोष्ठियाँ करते थे, सम्मेलन करते थे। इसका परिणाम यह हुआ उस युगमें अनेक अच्छे लेखक तैयार हो गये। उन्होंने बड़ी लगनसे हिन्दी साहित्यकी सेवा की। उस मंडलके कुछ साहित्यकारोंके संबंधमें कुछ चर्चाकी जायगी।

पंडित बदरीनारायण चौधरी (सं० १६१२-१९७९)—का जन्म मिर्जापुरमें संवत् १६१२ में हुआ था। रईस घरानेमें उत्पन्न हुए थे। और उनकी प्रत्येक बातसे रईसी टपकती थी। यह भारतेंदुके मित्र थे। रहने, वस्त्र इत्यादिका ढंग भी उन्हींके समान था। उन्होंने कई पत्र भी निकाले जिनके द्वारा कविता तथा नाटक और लेख प्रकाशित होते रहे। उनकी गद्यकी अलग अपनी शैली थी। लंबे उलझे वाक्य तथा अनुप्रासकी छटा उनके गद्यकी विशेषता थी। भाषा मँजी हुई रहती थी। व्यर्थके शब्द वह नहीं भरते थे। विचार और अर्थकी गहराई उनके लेखोंमें सदा रहती थी। कविता ही अधिक उन्होंने लिखी। साथ ही नाटक और लेख भी लिखे। पहले कहा गया है कि भारतेंदु युगके लेखकोंमें विनोद-प्रियताकी विशेषता थी। चौधरी बदरीनारायणके लेखोंमें भी यह विशेषता पायी जाती है। इन्होंने प्रहसन

भी अनेक लिखे। अपने पत्रों द्वारा समालोचनाकी भी नींव इन्होंने रखी। पुस्तकोंकी समालोचना उनमें छपती थी और छानबीनके साथ छपती थी। कवितामें अभी लोग खड़ी बोलीका प्रयोग उचित नहीं समझते थे। इसलिए इन्होंने भी काव्यकी भाषा व्रज ही रखी। यद्यपि कुछ रचनाएँ खड़ी बोलीमें भी हैं। यह भी शृंगार रसकी तथा सामयिक विषयों पर कविता करते थे।

उनकी भाषामें व्रजभाषाका पुट है, जैसे भई, भरति, सो इत्यादि। वाक्य बड़े हैं, गुथे हुए हैं। यमक तथा अनुप्राससे भाषा अलंकृत है। कविताका उदाहरण देखिये :—

जय जय भारत भूमि भवानी।

जाकी सुजस पताका जगके दसहूँ दिसि फहरानी।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सुहानी।
जा श्रीसोभा लखि अलका अरु अमरावती लजानी।
प्रनमत तीस कोटि जन अजहूँ जाहि जोरि जुग पानी।
जिनमैं झलक एकता की लखि जग मति सहमि सकानी।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोई छबि खानी।
सोइ प्रताप गुनजन गरबित ह्वै भरी पुरी धन धानी।

उनकी अधिकांश रचनाएँ शृंगार रसकी हैं।

प्रतापनारायण मिश्र (१९१३-१९५१)—भारतेन्दुयुगके विशिष्ट लेखक थे। यह भी गद्य, पद्य लिखते थे तथा इस युगके और लेखकोंके समान इन्होंने भी पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया और उसीके माध्यम द्वारा अपना साहित्य जनताको दिया। इनके लेखोंमें बड़ी सजीवता थी। रचनाओंमें व्यंग तथा हास्य सदा घोले रहते थे। इनका स्वभाव ही विनोदी था। इसलिए इनकी लेखनशैली भी वैसी ही बन गई थी। भाषामें चटपटापन लानेके लिए ग्राम्य प्रयोग करते भी

नहीं हिचकते थे। हास्य, व्यंग तथा ग्रामीणतासे मिलकर इनकी शैली प्रौढ़, सुबोध, रोचक तथा सजीव हो गयी। इनके लेखोंके शीर्षक भी विचित्र होते थे जैसे 'घूरे के लत्ता बिनैं, "कनातनका डौल बांधैं" 'मरे का मारैं शाहमदार' 'भौं' इत्यादि। इनके पत्रमें सब प्रकारके लेख निकलते थे और जो भी विषय हो उसमें विनोद वह ला भरते थे। इन्होंने नाटक तथा कविताएँ भी लिखी हैं। कविताएँ ब्रजभाषामें लिखी हैं। इनकी कविताएँ अधिकांश सामाजिक सुधार पर हैं। किन्तु इनकी देन हिन्दी साहित्यको गद्य की है। इन्होंने जो शैली अपनायी, अपने उन गुणोंके कारण जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, वह विशेष ढंगकी हो गयी है जिसमें एक निरालापन है, जो दूसरा अपना न सका। व्याकरणकी त्रुटियां अवश्य इनमें पायी जाती हैं और विराम चिह्न आदिकी चिन्ता भी यह नहीं करते थे किन्तु उस युगमें इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इनके लेखोंमें एक आत्मीयता पायी जाती है जो पाठकके हृदयमें घर कर लेती है। पाठकके हृदयके साथ इनके लेख चलते हैं। उनके अनेक लेख गम्भीर भी हैं।

बालकृष्ण भट्ट (१६०१-१६७१)—भारतेंदु युगके उन साहित्यकारोंमें थे जिन्होंने गद्यमें नवीन शैलीको जन्म दिया और गद्यकी राह पर मीलका नया पत्थर रखा। इन्होंने निस्वार्थ भावसे हिन्दीकी सेवा की। 'हिन्दी-प्रदीप' ३२ वर्षों तक स्वयं घाटा देकर चलाते रहे। तथा 'ब्राह्मण' पत्र द्वारा इन्होंने हिन्दीकी सेवाकी। इन पत्रोंमें गद्य तथा पद्यके लेख, गम्भीर तथा हास्यमय अधिकांश, भट्टजी ही लिखते थे। 'हिन्दी प्रदीप' में साहित्यिक तथा राजनीतिक लेख अधिक निकलते थे। इनके लेखोंमें भी हास्य और विनोदका चटपटापन रहता था। हिंदी पढ़ने-पढ़ानेकी ओर उन दिनों लोगोंको विशेष रुचि न थी। इसलिए साधारण पाठकोंके लिए तो यह भी कहानी, उपन्यास, लेख आदि मनोरंजक ढंगसे हास्य और विनोदका सहारा लेकर

लिखा करते थे। साथ ही साथ गंभीर विषयों पर वह निबंध लिखते थे। इसे यह रोचक बनाते थे और ऐसे लेख प्रकाशित करते थे जिसमें हिंदी साहित्यकी भी वृद्धि हो। उनकी कल्पनाकी उड़ान ऊँची होती है। जान पड़ता है लिखते समय वह अपना हृदय खोलकर रख देते हैं। वह साहित्यके विद्वान थे और भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था उनकी भाषामें फारसी और अरबीके चलते शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहार किये गये हैं। वह भाषाके प्रवाहकी ओर देखते थे। यह नहीं देखते थे कि किस भाषाका शब्द है। यह हिन्दीके पहले लेखक हैं जिनका विशेष झुकाव मुहावरोंकी ओर रहा है। व्यंग तथा विनोद इनके लेखोंमें भी पर्याप्त मात्रामें रहा है। इसी युगके और गद्य लेखकों के समान इनकी रचनाओंमें व्रजभाषाका प्रयोग और पूरबीपन पाया जाता है। यदि वह समझते थे कि हिंदीमें मेरे मनोभावको स्पष्ट करने योग्य शब्द नहीं है तो वह अंग्रेजी शब्द भी लिख डालते थे। उन्होंने नये शब्द और कहीं-कहीं नये मुहावरे भी गढ़े हैं। घरेलू विषयों पर छोटे छोटे हास्य-विनोदमय लेख उन्होंने लिखे जिनमें व्यंगकी तीखी बौछार भी है। वह इसलिए लिखे गये कि उनका प्रभाव बढ़े। इन्होंने अपने पत्रमें समालोचना भी आरम्भ की थी और गुण और दोष दोनों ही पारखीके समान लिखते थे। जिन लोगोंको भारतीय साहित्य-कारोंकी अंग्रेजी साहित्यकारोंसे तुलना करनेमें रस मिलता है उनका कहना है कि प्रतापनारायण मिश्र तथा बालकृष्ण भट्ट हिंदीके एडिसन और स्टील हैं।

श्री निवास दास (१६०८-१६४४)—भारतेंदुके समयके लेखकोंमें लाला श्री निवास दासका भी एक स्थान है। इन्होंने कई नाटक लिखे। 'प्रह्लाद चरित', 'तप्तासंवरण'। किंतु 'रणधीर प्रेम मोहिनी' ने अधिक ख्याति प्राप्त की। यह नाटक अंग्रेजी नाटकोंके आदर्श पर लिखा गया है।

इन्होंने 'परीक्षा गुरु' नामक मौलिक उपन्यास भी लिखा।

ठाकुर जगमोहनसिंह (१९१४-१९५६)—विंध्यप्रदेशके विजय-राघवगढ़के राजकुमार थे। काशीमें पढ़नेके लिए आये थे। भारतेंदुके संपर्कसे साहित्यकी ओर इनकी भी रुचि हुई। संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिंदीके ज्ञाता थे। भारतेन्दुका प्रभाव इन पर पड़ा। पर्वतीय प्रांतमें रहनेके कारण इनका हृदय प्रकृति की सुन्दरताको निरख चुका था और इसकी रस-माधुरी छक चुका था। इनका हृदय भी भावुक था और प्रेम से परिपूर्ण था। इनके पहले किसी गद्य-लेखकने प्रकृति की छटाका स्वाभाविक वर्णन नहीं किया था।

बाबू तोताराम (१९०४-१९५९)—भारतेंदु युगके कर्मठ कार्य-कर्ता थे। इन्होंने 'भारत बंधु' नामका पत्र निकाला था। हिंदी तथा अंग्रेजीके विद्वान थे।

केशवराम भट्ट (१९१३-१९६१)—ने नाटक इत्यादि लिखे। इनकी भाषा उर्दूके समान ही थी और नाम भी फारसी थे जैसे 'शमशाद सौसन', 'सज्जाद संबुल'।

राधाचरण गोस्वामी (१९१५-१९८२)—भारतेंदु द्वारा प्रका-शित हरिश्चन्द्र मैगजीनके लेखोंसे प्रभावित हुए। इन्होंने एक पत्र 'भारतेंदु' भी निकाला था और बहुतसे लेख भी लिखे। कई मौलिक नाटक इन्होंने लिखे।

अम्बिकादत्त व्यास (१९१७-१९५७)—बड़े प्रतिभाशाली हिंदी तथा संस्कृतके विद्वान थे। इन्होंने छोटे दो नाटक लिखे, ब्रजभाषामें कविताएँ लिखीं तथा गद्यमें अनेक लेख लिखे। यह घरेलू ढंगसे लिखते थे। विद्वत्ताका बोझ लेखोंसे प्रकट नहीं होता था। इनकी शैली सरल तर्कपूर्ण तथा रोचक है।

काशीनाथ खत्री (१६०६-१६४८)—का इस युगमें यही महत्व है कि इन्होंने अंग्रेजीकी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका अनुवाद किया।

राधाकृष्ण दास (१६२२-१९६४)—भारतेन्दुके फुफेरे भाई थे। इनका साहित्य-प्रेम बहुत अधिक था। इन्होंने कई नाटक लिखे। सबसे लोकप्रिय इनका नाटक महाराणा प्रताप है।

स्वर्ण विहान

[१९५०–१९७५]

वस्तु स्थिति—भारतेंदुकी मृत्यु संवत् १९४१में हुई। उनके अनेक साथी उनके बाद तक जीवित रहे और जिस प्रासादकी नींव उन्होंने डाली थी उसपर ईंटें रखते रहे। शतियों से जो उपेक्षा हिंदीके प्रति लोगोंको थी वह अब नहीं रह गयी थी। भारतेंदुकी मृत्युके बाद ही हिंदीका नया युग आरम्भ होता है। लोगोंमें इस बातकी आशा हो गयी कि हिन्दीका भविष्य प्रकाशमय है जो लोग समझते थे कि हिंदीमें 'कुछ नहीं' है उनका ध्यान भी हिंदीकी ओर गया। अंग्रेजी शिक्षायुक्त लोग हिंदीकी उपेक्षा करने लगे थे, उनका भी ध्यान इधर खिंचा। इससे लाभ और हानि दोनों हुई। लाभ तो यह हुआ कि हिंदी पढ़ने और लिखनेकी ओर लोगों की रुचि हुई। यह तो लोगोंको सपनेमें भी विश्वास नहीं था कि हिंदी किसी समय राष्ट्रभाषा हो जायगी किंतु हिंदी जिस रूपमें इस युगमें लोगोंके सम्मुख आयी लोगोंने उसे अपनाना उचित समझा। हानि यह हुई कि हिंदीके पठन-पाठनकी कोई उचित व्यवस्था न थी। इसलिए जिन लोगोंने उत्साह-वश हिंदी लिखना आरम्भ किया उन्होंने भाषाको ठीक बनानेकी ओर ध्यान नहीं दिया। जो जिस भाषाकी जानकारी रखता था उसीका प्रयोग हिंदीमें करता था। फारसी जानने वाले फारसीकी शब्दावलीका प्रयोग करते थे और वैसा ही वाक्य-समूह बनाते थे। अंग्रेजी जानने

वाले अंग्रेजी ढंगके वाक्य लिखते थे और संस्कृतके पंडित संस्कृत शब्दोंकी भरमार हिंदीमें लाते थे। हिन्दीकी कोई सुदृढ़ तथा अपनी शैली नहीं बन सकी। इस समय दूसरी भाषाओंके अनुवाद अधिक हिंदीमें आये। मराठी, गुजराती, बंगाली तथा अंग्रेजीसे। अंतिम दोनों भाषाओंसे अधिक लोगोंने अनुवाद किया। स्वभावतः इन भाषाओंके गुण-दोष हिंदीमें आ गये। बँगलाके कितने ही सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासोंका और कहानियोंका हिंदीमें अनुवाद हुआ। अनेक मुहावरे और शब्द जो हिंदीके निजी नहीं थे, आये। वह खटकते भी थे। हिंदीकी परंपराके प्रतिकूल थे। कभी-कभी बहुत ही अस्वाभाविक जान पड़ते थे। किन्तु उनमें बहुतसे शब्द जो बँगला भाषा के थे, और अनेक मुहावरे चल पड़े और धीरे-धीरे हिंदीके हो गये। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इन लोगोंने हिंदीमें लिखनेका प्रयत्न किया। उससे हिंदीका भला ही हुआ। यह बात ठीक है कि जितने लोग थे उतने स्वर थे। पचासों प्रकारकी हिंदी देखनेमें आने लगी। यों किसी भाषामें जितने बड़े-बड़े लेखक होते हैं उतने प्रकारकी शैलियाँ होती हैं। किंतु उतनी तरहका व्याकरण तथा वाक्य विन्यास नहीं होता। व्याकरण भी अभी ठीक किसीने नहीं बनाया। कुछ हिंदीके व्याकरण देशी तथा विदेशी विद्वानोंके बने थे किन्तु उनमें अनेक त्रुटियाँ थीं और हिंदीके लिए वह अनुकूल न थे इसलिए जिसे जो मनमें आता था लिखता था।

अंग्रेजी पठन-पाठनके कारण जहाँ भाषामें कुछ दोष आये वहीं कुछ आवश्यक सुधार भी होने लगे। विराम-चिह्नोंका प्रयोग होने लगा। पैराग्राफ ठीकसे बनने लगे। अंग्रेजी भाषामें अनेक नये विचारके ग्रन्थ थे। उनके विचारोंका प्रभाव हिंदी लेखकों पर पड़ा। अनुवाद द्वारा कुछ तो वह विचार हिंदी में आये कुछ उसी ढंग से हिंदी लेखकों ने विचार करना सीखा। जब मौलिक लेख कम होते हैं तब अनुवादसे

ही काम चलता है। इसलिए इस युगमें इन्हींसे हिंदीका भांडार भरा गया। इन पुस्तकोंके पढ़ने वालों पर इनकी शैलीका प्रभाव पड़ा और जब उन्होंने स्वयं लिखा तब उनके लेखोंमें भी यही दोष आये जो अनूदित पुस्तकोंमें थे।

गद्य का युग

पत्र-पत्रिकाएँ भी अब अधिक निकलने लगी थीं। उनके लिए भी लेख और लेखककी आवश्यकता पड़ी। कुछ मौलिक तथा कुछ अनूदित लेख उनमें निकलने लगे इससे हिंदी का विकास भी हुआ, वृद्धि भी हुई। यों तो किसी युगमें साहित्य का कोई रूप नितांत एक नहीं होता। यह कभी नहीं होता कि किसी साहित्यमें किसी समय केवल नाटक ही लिखा जाय या केवल कविता ही लिखी जाय। इसी प्रकार सभी युगमें सभी विचार-धाराएँ चलती रहती हैं। हाँ यह अवश्य होता है किसी एककी प्रधानता होती है। इस युगमें भी कविताएँ लिखी जाती थीं, नाटक लिखे जाते थे किन्तु गद्यकी ही ओर लोगोंकी विशेष दृष्टि थी। प्रायः सभी साहित्यकारोंका यही लक्ष्य था। इसके कई कारण थे। एक तो कवितासे एक प्रकार पठित समाज ऊब गया था। कुछ समस्यापूर्ति करने वाले और कुछ पत्र-पत्रिकाओंमें लिखने वाले कविता करते थे। नहीं तो लोगोंको गद्य ही प्रिय लग रहा था। अंग्रेजी साहित्यके पठन-पाठनका भी यह परिणाम हुआ। वहां गद्यकी महत्ता थी। अच्छे-अच्छे निबंध, तथा कहानियाँ देखनेमें आयीं। उनसे भी गद्यको ही प्रोत्साहन मिला। यह प्रचारका युग था। भाषण अथवा लेख द्वारा ही प्रचार संभव था। हिंदीका प्रचार ओषधियोंके प्रचारकी भाँति गा-गा कर नहीं हो सकता। पत्र-पत्रिकाओंकी संख्या भी बढ़ती जा रही

थी। किसी पत्रके लिए यह संभव नहीं था कि वह साराका सारा छंदों-में निकले इसलिए भी गद्यकी ओर लोगोंको ध्यान देना पड़ता था। यदि इस समय गद्यका इतना प्रसार न हो गया होता आगेकी राह रुक गयी होती। इसलिए यह युग गद्यका ही माना जाता है। अधिक साहित्यकी रचना ऐसी ही हुई।

उपन्यास

गद्य साहित्यमें कथा साहित्य, नाटक तथा निबंध होते हैं। उप-न्यासके लिए कुछ विशेष सामाजिक परिस्थितिकी आवश्यकता होती है और तभी उसे निरखने-परखनेवाले उसका चित्रण कर सकते हैं। कुछ कहानियाँ और उपन्यास पहले निकल चुके थे। किंतु अंग्रेजी तथा बंगाली उपन्यासोंकी तुलनामें वह जँच नहीं रहे थे। उपन्यास पढ़ने वालोंकी संख्या बढ़ गयी थी इसलिए उपन्यास भी बहुत लिखे गये। मौलिक उपन्यासोंमें राजनीतिक विचारधाराएँ अथवा सामाजिक या दार्शनिक प्रवृत्तियोंका समावेश नहीं था। सामने बँगला उपन्यास थे, अंग्रेजी उपन्यास थे। बँगला उपन्यास स्वयं अंग्रेजी उपन्याससे प्रभा-वित थे। इसीलिए हमारे उपन्यास इनसे प्रभावित थे। घरेलू तथा सामाजिक व्यवस्था, रोमांसपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ तथा प्रत्येक युग का आवश्यक विषय प्रेम ही उपन्यास के विषय होते थे। ऐयारी और तिलिस्म भी इस युगके उपन्यासोंके मनोरंजक विषय थे, जिन्हें बालक, युवक, बूढ़े, सभीने पसंद किया। आदर्शवाद ही उपन्यासोंका मूल मंत्र था। पापी, दुष्ट, खल, पाखंडीकी सदा पराजय होती थी। हमारी प्राचीन परम्पराका निर्वाह होता था। अधिक मौलिक नाटक घटना प्रधान ही इस युगमें लिखे गए। चरित्रोंका घात-प्रतिघात, उत्थान-पतन नहीं दिखाया गया। इसका कारण हमारा उस समयका समाज था। स्त्रियां परदेमें रहती थीं रोमांसके लिए स्वाभाविक परि-

स्थिति नहीं थी। कभी-कभी उपन्यासकारको ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी पड़ती थी। भाषा इन उपन्यासोंकी सरल हिन्दी है। इस कारण पाठकोंमें इनका प्रचार अधिक हुआ।

देवकीनन्दन खत्री

इनका नाम मौलिक उपन्यासकारोंमें सबसे पहले आता है। इन्होंने पचीसों उपन्यास लिखे। जिस युगका वर्णन हम कर रहे हैं उसके पहले भी कई उपन्यास यह लिख चुके थे। जैसे नरेन्द्र मोहिनी, कुसुमकुमारी, वीरेन्द्रवीर आदि। यह सभी तिलस्मी उपन्यास हैं और चावसे पढ़े जाते थे। किन्तु सबसे अधिक सफलता उन्हें 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता सन्तति', तथा भूतनाथकी जीवनीमें मिली। जो भी कुछ हिन्दी जानता था उसने यह पुस्तकें पढ़ीं। और इनकी ख्याति इतनी बढ़ी कि कुछ लोगोंने इन्हीं उपन्यासोंको पढ़नेके लिए हिन्दी सीखी। इसे पढ़नेके कारण कितनोंको हिन्दी पढ़नी आ गयी। और वह हिन्दीके पाठक ही नहीं लेखक भी हुए। यह उपन्यास भी ऐयारी तथा तिलस्मके हैं। इनमें घटनाकी प्रधानता है, पाठकको सदा उत्सुक बनाये रहती हैं। रोमांस है किन्तु कहीं अश्लीलता नहीं आने पायी है। कुछ आलोचकोंका कहना है कि यह रचनाएँ साहित्यकी श्रेणीमें नहीं आतीं। ऐसा हम ठीक नहीं समझते। इन रचनाओंमें उपन्यासों के अनेक गुण जैसे पाठकोंकी उत्सुकता, घटनाओंका समय-समयपर बदलना, सम्वाद पाये जाते हैं। हिन्दी उपन्यासके आरंभिक जीवनकी यह कृतियां हैं, उसी मानदण्डसे नापना चाहिए। उनकी भाषा भी बहुत सरल थी। साधारण हिन्दी जानने वाला भी पढ़ और समझ सकता है और उर्दू जाननेवाला भी यदि नागरी लिपि जानता हो तो वह भी पढ़ और समझ सकता है। जितने पाठक उनके उपन्यासके थे उतने किसीके नहीं और अब भी कुछ-न-कुछ लोग इन पुस्तकोंको पढ़ते हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी (१९१२-१९८९)

इस युगके दूसरे लौकिक उपन्यासकार हैं।

गोस्वामी वल्लभ संप्रदायके थे और स्वभावसे भी रसिक थे। इन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास बहुतसे लिखे हैं। कुल छोटी-बड़ी मिलाकर ६५ कृतियाँ हैं। इनके उपन्यास मनोरंजक हैं, चरित्र-चित्रण भी इनके उपन्यासों में मिलता है। किंतु इनके किसी-किसी उपन्यासमें वासनाओंका ऐसा चित्रण किया गया है जिसका प्रभाव पाठकोंके मन पर अस्वस्थ पड़ता है। समाजका जो चित्र उन्होंने खींचा है वह बहुत सजीव और चित्ताकर्षक है। वह संस्कृत तथा फारसी भी जानते थे। इसलिए उन्होंने कुछ पुस्तकें विशुद्ध हिंदीमें लिखीं और कुछ पुस्तकें ऐसी भी लिखी हैं जो फारसी शब्दों तथा मुहावरोंसे भरी हैं। जहाँ उन्होंने ऐसा किया है वहाँ बहुत भद्दापन आ गया है क्योंकि अनेक शब्दोंका अर्थ संभवतः उन्हें नहीं मालूम था। उनका अशुद्ध प्रयोग है। ऐतिहासिक भूलें भी उन्होंने की हैं। यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास इन्होंने लिखे किन्तु उस समयकी संस्कृति, राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक व्यवस्थाका अध्ययन करके इन्होंने नहीं लिखा। केवल दरबारी तथा वैयक्तिक षड्यंत्र, विलास और प्रेमके चित्रणमें ही रह गये। इनके मुख्य उपन्यास हैं चपला, तारा, लखनऊ की कब्र, लीलावती, रजिया बेगम, लवंगलता, हीराबाई आदि।

अयोध्यासिंह उपाध्याय (१९२२-२००६)

इनकी ख्याति यद्यपि कविताके ही लिए है, इन्होंने तीन उपन्यास भी लिखे हैं। वेनिसका बाँका, ठेठ हिंदीका ठाठ, तथा अधखिला फूल। पहली संस्कृत-गर्भित भाषामें है, और ठेठ हिंदीमें भाषाके उदाहरणकी दृष्टिसे अंतिम दोनों महत्त्वके हैं। यों कथा भी मनोरंजक हैं। शिक्षाप्रद

है। 'अधखिला फूल' तथा 'ठेठ हिंदींका ठाठ' में कोई संस्कृतका तत्सम शब्द या फारसीका शब्द नहीं आया है।

मौलिक उपन्यासोंसे अधिक अनुवाद इस युगमें हुए। भारतेंदुके समय पर कुछ अनुवाद हुए थे। इस युगमें अनुवादों की, बाढ़-सी आ गयी। बँगलाके प्रमुख उपन्यासकार बंकिमचंद चटर्जी रमेशचंद्र दत्त, शरतबाबू, रविबाबू, चंडीचरणसेन आदि की पुस्तकोंका अनुवाद धड़ल्लेसे होने लगा।

कहानियाँ

कहानियोंकी कहानी बहुत पुरानी है। उपनिषदोंमें, जातक कथाओं में तथा कथासरित्सागर आदिमें संस्कृतमें कहानियाँ हैं जिनका एक मात्र उद्देश्य शिक्षा देना है। आजकल जिस प्रकारकी कहानियाँ लिखी जाती हैं वह एक दम भिन्न हैं। अमेरिका तथा यूरोपमें जीवन-संघर्षके कारण समयाभाव है। कहा जाता है कि इसी समयाभावके कारण छोटी कहानियोंका आविष्कार हुआ कि थोड़े समयमें लोग अपना मनोरंजन कर सकें। यह आंशिक सत्य हो सकता है क्योंकि अब भी इन देशोंमें उपन्यास लिखे और पढ़े जाते हैं। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान हिन्दी कहानी साहित्यका सूत्रपात अंग्रेजीका प्रभाव है। वह प्रभाव बँगलाके माध्यमसे आया था। इन कहानियों और प्राचीन कहानियोंका अंतर स्पष्ट है। उन कहानियोंमें स्पष्ट शिक्षा देनेका उद्देश्य है। घटना की प्रधानता है। ऐसी घटना हुई इसका यह प्रभाव हुआ। नये युगकी कहानियोंमें घटना तो होती ही है। कुछ मानसिक घात-प्रतिघात होता है। उस घटनाका परिणाम ऐसा होता है जिससे पात्रोंके जीवनमें परिवर्तन हो जाता है। बाह्य जगत् की घटनाओंका प्रभाव अंतर्जगत् पर पड़ता है। घटनाओंसे पात्रोंके चरित्र पर भी प्रभाव पड़ता है। चरित्रोंका उत्थान और पतन भी होता है। नाटकोंका प्रभाव

कहानियों पर भी पड़ा और संवाद भी कहानियोंमें आया और अब कहानियोंका आवश्यक अंग हो गया। इस प्रकार कहानियोंके कई भेद बन गये हैं। यों कहानियोंके अनेक भेद हैं। किन्तु मुख्यतः (१) घटना प्रधान (२) चरित्र प्रधान, और (३) भावना प्रधान कहानियाँ होती हैं। जिस युगका इतिहास लिखा जा रहा है उसमें किशोरीलाल पहले कहानी लेखक हैं। इसके पहले कहानियाँ जो लिखी गयीं जैसे रानी केतकीकी कहानी इस श्रेणीमें नहीं आती। किशोरीलाल गोस्वामीकी कहानी 'इंदुमती' पहली हिन्दीकी मौलिक कहानी है। कुछ लोगोंका कहना है कि इसका कथानक शेक्सपियरके 'टेंपेस्टसे' लिया गया है। थोड़ा साम्य अवश्य है। परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि टेम्पेस्ट ही उसका आधार है। इसके पश्चात् और भी अनेक कहानियाँ सरस्वतीमें निकलीं। रामचन्द्र शुक्लका 'ग्यारह वर्षका समय' और बंग महिला की 'दुलाईवाली' भी कहानियाँ सुन्दर हैं। यह कहानियां हिन्दीके लिए नयी थीं। पाठकोंको बहुत रुचीं। मासिक पत्रोंमें कहानियोंका विशेष स्थान हो गया और कोई मासिक पत्र अच्छा नहीं समझा जाता था जिसमें एकाध कहानी न हो। इस युगके अंतिम दस वर्षोंमें तो कहानियोंका ताँता लग गया और बहुत अच्छे कहानी लेखकोंने हिन्दी साहित्यमें प्रवेश किया। जयशंकर प्रसादने 'ग्राम' नामकी कहानी मासिक पत्र इंदुमें सं० १९६८ में छपवाई। जयशंकर प्रसादने इसी युगमें कहानी तथा कविताका आरम्भ किया जो बादमें पूर्ण विकसित हुई। हास्यरसकी कहानी भी पहले पहल जी० पी० श्रीवास्तवने इंदुमें लिखी। पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिकने भी कहानीका आरंभ इसी युगमें किया। उनकी कहानी 'रक्षाबंधन' सं० १९७०में सरस्वतीमें छपी थी। बिहारके राजा राधिकारमणप्रसाद-सिंहने, जो काव्यमय भाषामें कथा कहानी लिखते हैं, इंदुमें 'कानोंमें कंगना' नामकी कहानी छपवाई। पं० ज्वालादत्त शर्माने भी सरस्वतीमें

इसी युगमें कहानी लिखना आरंभ किया। चंद्रधर शर्मा गुलेरीने भी इसी युगमें अपनी विख्यात कहानी 'उसने कहा था' सं० १९७२में सरस्वतीमें प्रकाशित करायी। गुलेरीजी संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंशके पंडित थे। किंतु इस कहानीमें उनके भाषा-पांडित्यका बोझ नहीं दिखाई पड़ता। कलाका तथा घटनाओंका सूक्ष्म देखने वाला कहानीकार ही प्रकट होता है। यह कहानी घटना प्रधान है। पहले महायुद्धसे जोड़ी गयी है। प्रेमका ऐसा सुन्दर; भावपूर्ण, निर्मल प्रदर्शन उनकी लेखनीकी करामात है। अपने ढंगकी अकेली कहानी है। इसी युगके अंतिम कालमें प्रेमचंदका भी आगमन हुआ। इसी युगके अंतिम भागसे कहानियोंका आरंभ होता है।

नाटक

इस युगके पचहत्तर वर्षकी लम्बी अवधिमें कोई प्रथम श्रेणीका नाटककार नहीं हुआ। भारतेंदुने जो कार्य किया था और जो आदर्श हिंदी जगतके सामने रखा था उसका अनुकरण कोई प्रतिभा न कर सकी। इसका मुख्य कारण तो यह था कि हिंदीका कोई अपना रंगमंच न था। अंग्रेजी नाटक लोगोंने पढ़ा था, बंगला नाटक लोगोंने देखा था। हिंदीकी जनता कुछ ऐसा चाहती थी जो समाजकी समस्याओंको, राजनीतिक परिस्थितियोंको सामने रखे। इस युगमें अनुवाद ही अधिक होते रहे। बंगलामें द्विजेन्द्रलाल राय सफल तथा जनप्रिय नाटककार हो गये हैं। उनके अनेक नाटकों जैसे शाहजहाँ, दुर्गादास, ताराबाई उस पारका अनुवाद रूपनारायण पाण्डेयने किया। अनुवाद सफल हुआ। भाषा ठीक थी और मूलके भाव ठीक-ठीक उतरते थे। इनमें पहले तीन ऐतिहासिक हैं। 'उस पार' सामाजिक नाटक है। विधवा विवाह की समस्या को लेकर लिखा गया है।

संस्कृतके नाटकोंके अनुवाद भी इसी युगमें हुए। लाला सीताराम अंग्रेजी तथा संस्कृतके विद्वान थे। पहले वह शिक्षा-विभागमें थे फिर डिपुटी कलक्टर हो गये। उन्होंने भारतेंदुकी मृत्युके दो एक साल पहले ही मेघदूतका अनुवाद आरंभ किया। संवत् १९५०में उसे प्रकाशित किया। संवत् १९५४में नागानंदका। फिर तो मृच्छकटिक, महावीर चरित, उत्तर रामचरित, मालती माधव, मालविकाग्निमित्रका अनुवाद उन्होंने किया। भाषा ब्रज है। पद्योंके अनुवादमें उन्हें सफलता नहीं मिली। भाषा सरल सुबोध है। संस्कृतका भाव ऐसी सादगीसे लाया गया है कि कहीं पण्डिताऊपन नहीं झलकता। पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रने वेणी संहार और अभिज्ञान शाकुंतलका अनूवाद किया। बाबू बालमुकुंद गुप्तने रत्नावलीका अनुवाद पूरा किया जिसका कुछ अंश भारतेंदु कर चुके थे।

सत्यनारायण कविरत्न ने भवभूतिके नाटक मालतीमाधव तथा उत्तररामचरितका अनुवाद किया। १९७०-७५के बीच यह प्रकाशित हुए। इनकी भाषा सरल और भावपूर्ण है। मूल भावोंकी रक्षा भी हुई है। किंतु पद्योंका अनुवाद कहीं-कहीं दुरूह हो गया है। यद्यपि कविताएँ बहुत मधुर और रसपूर्ण हैं, उनमें एक दोष आ गया है। कहीं-कहीं ऐसे शब्दोंका प्रयोग किया गया है जो प्रचलित नहीं हैं। किन्तु इन दो सुन्दर नाटकोंके यही अनुवाद उपलब्ध है। उनके बाद किसीने अनुवाद करने का परिश्रम नहीं किया।

निबंध

अभी तक किसी भाषाके गद्यका जो विकास हुआ है उसमें निबंध सबसे प्रौढ़ माना जाता है। इसमें इस बातका पता चल जाता है कि लेखक का भाषा पर कितना अधिकार है और भावोंको प्रकट करनेकी कितनी योग्यता है। निबंधोंके अनेक प्रकार हो सकते हैं। किन्तु चार

मुख्य हैं। (१) वर्णनात्मक—इस प्रकारके निबंधमें लेखक किसी वस्तु स्थान, घटना, व्यक्ति इत्यादि का वर्णन करता है। जो लेखक जितनी सजीवतासे वर्णन करेगा उतनाही अच्छा वर्णनात्मक लेख होगा। (२) भावात्मक—उसे कहते हैं जिसमें बुद्धि या तर्ककी विशेषता न हो। मनोभाव अथवा हृदयके भावोंकी प्रधानता हो। इसी शैलीके अंतर्गत प्रलापात्मक निबंध आ जायँगे। यह वह शैली है जिसमें लेखक सभी विचारोंके बन्धनसे मुक्त होकर जो भाव उठता है लिखता है। (३) विचारात्मक—वह निबन्ध होते हैं जिनमें दार्शनिक ढंगसे विचार प्रकट किये जाते हैं। तर्कपूर्ण बातें कहीजाती हैं। भावुकता का कहीं नाम नहीं होता। (४) व्यक्तिगत—यह निबन्ध का आधुनिकतम रूप है। लेखक अपने मनोभावों को, अपने अनुभवों को लिखता है। इसमें किसी क्रम की आवश्यकता नहीं है।

व्यवहारमें ऐसा संभव नहीं होता कि किसी एक शैलीका ही निबन्ध लिखा जाय। कई शैलियाँ मिल जाती हैं। इस मिलापसे निबंधमें सुन्दरता आ जाती है। व्यक्तिगत और भावात्मक या भावात्मक और वर्णनात्मक मिलकर बहुत सुन्दर निबन्ध बन जाते हैं।

भारतेंदुके समय ही हिन्दी निबंधोंकी नींव पड़ चुकी थी। और उनका वर्णन पहले आ चुका है। उन लोगोंमें भाषाका चाहे दोष रहा हो, विचारोंका नहीं रहा। व्याकरण उन दिनों परिष्कृत नहीं हुआ था इसलिए उनका दोष भी नहीं माना जा सकता, किन्तु विषयोंके चुनावमें वह आजसे पीछे नहीं रहे। उनकी शैली भी मनोरंजक, रसपूर्ण, हृदय पर प्रभाव करने वाली थी। उन्होंने केवल सामाजिक विषयों पर ही प्रकाश डाला। स्थायी विषयों पर अपने विचार प्रकट किये।

पत्र-पत्रिकाएँ ही निबंधके लिए समुचित होती हैं। इसलिइ इस युगसे 'सरस्वती' के द्वारा निबंध-लेखकोंको सुविधा मिली। इसकी राह दिखायी पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने। उन्होंने बेकन के निबंधों का पहले हिन्दीमें अनुवाद किया।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

(१८२१-१९९५) ने संवत् १९६० में सरस्वतीका संपादन अपने हाथोंमें लिया। उनके संपादनकी कुशलताका परिचय पहले दिया जा चुका है। उनके लेखोंकी यह विशेषता थी कि विविध विषयोंको अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषासे लेकर वह अनुवाद कर डालते थे। अनुवाद सरल होता था जिससे साधारण पाठक भी समझ लें। उनके कुछ लेखोंको छोड़कर अधिकांश लेखोंमें गंभीर चिंतनका अभाव है। इनकी शैली भी कई तरह की है। (१) एक शैली वह है जिसमें यह सभी भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग बेखटके करते हैं। अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, इस प्रकारकी भाषा वह उस समय लिखते हैं जब कुछ समझाना होता है। (२) इनकी दूसरी शैली वह है जिसका प्रयोग वह आलोचनाके समय करते हैं। भाषाकी दृष्टिसे वह वही शैली है जो पहली किन्तु इसमें व्यंगका पुट रहता है। द्विवेदीजी क्रोधी स्वभाव के आदमी थे। इसी कारण उनका व्यंग तीखा होता था और खूब बैठता था। (३) जब वह किसी गूढ़ विषय पर लिखते हैं तब उनकी शैली विशुद्ध हिन्दीकी हो जाती है। गंभीर वाक्योंमें संस्कृत शब्दोंका व्यवहार करते हैं किन्तु दुरूह नहीं लिखते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं द्विवेदीजीने विचार तथा विषयके अनुसार विभिन्न शैलियोंका प्रयोग किया। चाहे समयाभाव हो, चाहे और कोई कारण रहा हो उन्होंने मौलिक ऐसे बहुत लेख नहीं लिखे जो हिंदी की देन हो। किन्तु मार्ग उन्होंने अवश्य दिखाया। हिन्दी गद्यको वह

ठीक राह पर लाये। छोटे-छोटे वाक्योंका उन्होंने अपने लेखोंमें प्रयोग किया। यह पुरानी परिपाटीके विरुद्ध था। छोटे-छोटे वाक्योंका प्रयोग अच्छा लगता है, यदि बीच-बीच कहीं-कहीं बड़े वाक्य भी आते रहे। द्विवेदीजीके गद्यमें यह भी पाया जाता है कि एक ही बातको घुमा-फिरा कर कई बार दुहराते हैं। विरामादि चिन्होंका ठीक-ठीक प्रयोग करके भी उन्होंने हिन्दी लेखकोंको राह दिखायी।

द्विवेदीजीकी महत्ता यही है कि उन्होंने गद्य लिखनेका ठीक ढंग बतलाया। वह पथ-प्रदर्शक थे, साहित्य के स्रष्टा नहीं थे। भारतेंदु के पश्चात् कोई हिंदीका ऐसा साहित्यिक न था जो केन्द्र बनकर साहित्य-कारोंको एकत्र करता; उन्हें ठीक रास्ते पर ले चलता। यह कार्य द्विवेदीजीने किया। वह लेखकों पर नियन्त्रण भी रखते थे। उन्हीं लेखकोंपर नहीं जो सरस्वतीमें लिखते थे, सभी हिन्दीके लेखकों पर उनकी धाक जमी थी। कोई अशुद्ध यदि लिखता था तो उसकी पूरी मरम्मत करते थे। कहीं भी व्याकरणकी अशुद्धि दिखायी दी और उन्होंने फटकारा। चाहे कोई कितना ही बड़ा हो भाषा और हिन्दीके सम्बन्धमें वह उसके द्वारा धाँधली नहीं सहन कर सकते थे। प्रसाद जीकी कविता उन्होंने एक बार लौटा दी थी। साथ ही नये लेखकोंको यदि वह उनकी बात मानते थे तो प्रोत्साहन भी देते थे। जबतक वह जीते रहे वह हिन्दी के बिना मुकुट के सम्राट् थे।

माधवप्रसाद मिश्र (१६२८–१६६४)

यह हिसारके रहने वाले थे। कट्टर सनातन धर्मी थे। इनकी लेखनीमें बड़ा ओज था। इन्होंने कई पत्रोंका संपादन किया और अनेक विषयों पर लेख लिखे हैं जिनसे पता लगता है कि वह किसी विषय पर लेख लिख सकते हैं। जीवन चरित, पुरातत्त्व, त्योहार, साहित्य, राजनीति, भ्रमण, धर्म, सभी विषयों पर इनके निबन्ध हैं

और उच्चकोटिके। कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। इनकी लेखनीमें उस समय बहुत जोश आ जाता था जब कोई उन्हें छेड़ देता था। अपने लेखोंमें जब वह किसीका खंडन करते थे बड़े बलपूर्वक तब वह लेख सुन्दर और ओजमय हो जाते थे। उन लेखोंमें केवल भावुकता नहीं रहती थी; तर्क भी पूरा रहता था। द्विवेदीजीके मतोंका भी खंडन किया था। संस्कृतके विरोधमें कभी यदि कोई लेखनी उठाता था तो यह उलझ पड़ते थे और बड़ी शक्तिसे विरोध करते थे। इनके लेख प्रायः सामयिक विषयों पर हैं। किंतु 'धृति', 'क्षमा', ऐसे निबन्ध हैं जो स्थायी विषयों पर है। सामयिक विषयों अथवा विवादवाले विषयों पर भी जो कुछ इन्होंने लिखा उनका स्थायी महत्व है।

नाथूराम शंकर शर्मा (१६१६-१६८६)

इनका उपनाम शंकर था। बहुत प्रतिभाशाली कवि थे। शब्दों पर बहुत अधिकार था। छंदोकी कलाका इन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। इनकी भाषामें ओज तथा प्रवाह है। यह व्यंग भी बहुत अच्छा करते थे। कवितामें कभी-कभी अक्खड़पन भी दिखाते थे। सामाजिक कुरीतियों पर इन्होंने कविताएँ की थीं। इन्होंने एक प्रबन्ध काव्य लिखा था 'गर्भ रंडा रहस्य' जिसमें उस कन्याकी दुखमय परिस्थितिका वर्णन है जो गर्भमें ही विधवा हो गयी थी। अपनी रचनाओंमें अनाचारोंको फटकारते नहीं हिचकते थे। पहले व्रजभाषामें रचना करते थे फिर खड़ी बोलीमें लिखने लगे। छंदो पर इतना अधिकार था कि मात्रिक छंद भी वार्णिक ही लिखते थे।

सत्यनारायण कविरत्न (१६३६-१६७५)

इनका नाम हम गर्वसे लेते हैं। यह उन कवियोंमें थे जिन्होंने इस समय भी जब जोरदार पुकार खड़ी बोलीमें कवितामें करनेकी थी,

ब्रजभाषामें ही कविताकी। यह बहुत ही भावुक कवि थे और इनका हृदय प्रेमसे ओतप्रोत था। गाँव में रहते थे और वैसी ही रहन-सहन, वैसी ही सादगी जीवनमें अपनाली थी। वह पत्र मित्रोंके पास पद्यमें लिखा करते थे। उनकी ब्रजभाषा बड़ी मधुर, बड़ी सजीव थी। वह पुरानी परंपरावाली भाषा न थी। जो ब्रजमें बोली जाती थी, वह थी। उनके नाटकोंके अनुवादकी बात नाटकोंके संबंधमें लिखते समय लिखी जा चुकी है। उनकी रचनाएँ फुटकल ही हैं। सामयिक विषय पर, जैसे देश-दशा, देश-प्रेम आदि उन्होंने लिखा।

आलोचना

आज हम जिस रूपमें आलोचना समझने लगे उसका ढंग इस युगमें नहीं था। आलोचनाका वैज्ञानिक ढंग पीछे आरम्भ हुआ। आलोचनाका क्या स्वरूप साहित्यके लिए आवश्यक है यह हम आगेके अध्यायमें बतायेंगे। यहाँ हम यही बतायेंगे कि इस नव-जागरणके समय इधर भी कुछ दृष्टि लोगोंकी गयी। भारतेन्दु-युगमें इसका सूत्रपात हुआ।

पण्डित बदरीनारायण चौधरी

ने अपने पत्र आनंद-कादंबिनीमें पहले पुस्तकोंके सम्बन्धमें लिखना आरम्भ किया।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

ने सरस्वतीमें अनेक पुस्तकोंकी आलोचना की। पुराने संस्कृत काव्यों की उन्होंने विस्तृत समीक्षा की। नयी पुस्तकें उनके पास आलोचनाके लिये जाती थीं तो सरस्वतीमें वह उनके गुण-दोषकी तीव्र शब्दोंमें टीका-टिप्पणी करते थे। लाला सीतारामने कालिदासकी पुस्तकोंका अनुवाद हिन्दीमें किया था। इसपर द्विवेदीजीने एक पुस्तक

लिखी, 'हिन्दी कालिदासकी आलोचना'। इसमें विस्तारसे भाव तथा भाषाके दोष दिखाये गये हैं। यह बात नहीं है कि अनुवादमें सब दोष ही दोष हैं, कुछ गुण उसमें है ही नहीं। किन्तु द्विवेदीजीकी यह दुर्बलता थी कि जिसकी प्रशंसा करते थे उसके दोष नहीं देखते थे और जहाँ दोष देखते थे, वहाँ गुण नहीं ढूँढते थे। उन्होंने 'विक्रमांकदेव चरित चर्चा', 'नैषध चरित चर्चा' तथा 'कालिदासकी निरंकुशता' नामकी तीन पुस्तकें लिखीं। यह क्रमशः सरस्वतीमें छपी थीं। पहले अंतिम पुस्तक पर पंडित मंडली कुछ क्षुब्ध भी हुई। इन पुस्तकोंसे हिंदी पाठकों को इनके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान हुआ, इसमें संदेह नहीं। द्विवेदीजीकी समालोचनामें 'बनाने' का ढंग भी रहता था। जहाँ भूल होती थी वहाँ व्यंगकी बौछार भी फेंकते जाते थे। इन पुस्तकोंके अतिरिक्त समय-समय पर साहित्यके समीक्षात्मक लेख भी वह लिखते थे। उन लेखों का संग्रह पुस्तकके रूपमें हो चुका है। जैसे 'रसज्ञ रंजन', 'साहित्य-सीकर' आदि। इनमें भी साहित्यके ज्ञानकी अच्छी सामग्री मिलती है। द्विवेदीजीकी आलोचनाका हिंदी लिखनेवालों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, लेखक भाषाके प्रति जागरूक हो गये और भाषा नियंत्रित हो गयी।

मिश्र बंधुओं*

ने भी इसी युगमें अपना आलोचना कार्य आरंभ किया। उन्होंने पहले हिंदी नवरत्न प्रकाशित किया जिसमें हिंदीके प्रमुख दस कवियों-की विस्तृत समीक्षाकी गई। मिश्रबंधुओंकी आलोचना संतुलित नहीं थी। व्यक्तिगत रुचिके अनुसार जो उन्हें अच्छा लगा उसकी प्रशंसाकी, जो बुरा लगा उसकी निंदाकी। किंतु यह मानना पड़ेगा कि यह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस ओर पाँव उठाया। इन्होंने बहुत परिश्रम किया और खोजकी। मिश्र-बंधुओंने प्रमादवश या पक्षपातवश गलतियाँ बहुत

* गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र।

की हैं। इन्होंने आगे चलकर 'मिश्रबन्धु-विनोद' चार भागोंमें प्रकाशित किया। इसमें आरंभसे लेकर आज तक जितने कवियों, लेखकोंका नाम प्राप्त हो सका उनका वर्णन तथा उनकी रचनाओंका नाम दिया गया है। आलोचना भी है किंतु वह आदर्श आलोचना नहीं कही जा सकती। यह ग्रन्थ बहुत कामका है। इसीके सहारे लेखकोंने हिंदीके इतिहास लिखे।

पद्मसिंह शर्मा

ने भी इसी समय आलोचनाका एक ढंग निकाला, इस आलोचना से तुलनात्मक आलोचनाकी नींव पड़ी। शर्माजीका ढंग भी मनोरंजक था। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी लेखनीमें जोर था। अपने कथनका समर्थन खूब करते थे।

इसी समय मिश्रबंधुओंने देवको बिहारीसे अच्छा ठहराया। दो दल हो गये एक देवके समर्थक और दूसरे बिहारीके। इस विवादके कारण समालोचनाके क्षेत्रमें कुछ प्रगति हुई और पं० कृष्णबिहारी मिश्रने देव और बिहारी नामकी पुस्तक प्रकाशितकी।

इस समय हिंदीके प्रति लोगोंका प्रेम उमड़ता चला आ रहा था और सभी प्रकारकी रचनाओंसे हिंदी वाङ्मय पूरा किया जा रहा था। जीवन-चरित भी लोगोंने लिखा। पंडित माधवप्रसाद मिश्रने एक चरितावली लिखी, शिवनंदन सहायने भारतेंदुकी बृहत जीवनी लिखी, किशोरीलाल गोस्वामीने राजा लक्ष्मणसिंह तथा राजा शिवप्रसादकी जीवनी लिखी, श्रीराधाकृष्णदासने भारतेंदु, सूर तथा बिहारीका जीवन वृत्त लिखा। श्यामसुन्दरदासने दो भागोंमें हिंदी कोविदरत्नमाला प्रकाशित की जिनमें हिंदीके साहित्यकारोंका परिचय है। इसी प्रकार वैज्ञानिक पुस्तकें भी कुछ लिखी गयीं किंतु उनमें खोज और गंभीरताका अभाव है।

स्वर्ण युग

सं० १९७५—२००० वि०

साहित्य या इतिहासका आरंभ या अंत किसी विशेष तिथिसे नहीं हुआ करता। प्रवृत्तियाँ एक दिनमें न बनती हैं न नष्ट होती हैं। जब किसी समाज या साहित्यमें नयी धाराका प्रवाह होता है तब कुछ न कुछ तो पुराना चला ही आता है। उसका वेग कम हो सकता है, उसमें जीवन कम हो सकता है किन्तु उसका अस्तित्व तो रहता है। जिस युगका वर्णन हम पहले कर आये हैं और जिसे द्विवेदी युग या सरस्वती युग कहा जाता है हिंदीके लिए बहुत शुभ युग था। उस युग में नवीनताका आरंभ होकर पूर्णताकी ओर हमारा साहित्य चला। अनेक बातोंकी कमी अवश्य थी किंतु साधारणतः हिंदीकी बहुत प्रगति हुई। इस युगमें गाड़ी और आगे चली विशेषतः कविता और अन्य साहित्यमें अवर्णनीय उन्नति हुई। उन्नतिके साथ विचारोंमें भी परिवर्तन होने लगा और द्विवेदीजीका नियंत्रण ढीला होने लगा। जहाँ द्विवेदीजी थे उससे बहुत आगे लोग बढ़ गये और जैसा सदासे होता चला आया है, द्विवेदीजी आगे बढ़ने वालोंका साथ न दे सके।

पश्चिमी साहित्य तेजीसे आगे बढ़ता चला जा रहा था। नये-नये प्रयोग हो रहे थे। बँगलावालोंने उनका अनुकरण भी किया। हिंदीके युवक तथा उत्साही साहित्यकारोंने वह सब देखा। इस युगमें पश्चिमका बहुत प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी राज अपने पूर्ण गौरवको प्राप्त कर चुका था। उसके चाकचक्यसे एक ओर लोग प्रभावित हो रहे थे। उसके विचारों तथा साहित्यकी नकल करनेमें नवीनता समझते थे। दूसरी ओर

एक समुदाय था जो प्राचीनताकी दुहाई सदा देता था और चाहता था कि प्राचीन ही सब कुछ सत्य और उचित है। प्रेसकी छपाई सस्ती और कागज भी सस्ते दामोंमें मिलता था। पुस्तकें इतनी संख्यामें निकलने लगीं कि अच्छेसे अच्छा पाठक अपनेको उनके साथ न रख सका।

पश्चिमसे जो लोग प्रभावित हुए वह वहाँके वादोंको साहित्यमें लाना ठीक समझते थे। उन्होंने पश्चिमके विचारोंको हिंदीमें ढालना आरंभ किया। इबसेन और बर्नार्डशासे प्रभावित होकर समस्या नाटकोंका प्रवाह आया। समस्या नाटकोंमें कोई हानि न थी किंतु अनेक लोगोंने यह न समझा कि क्या हमारे समाजकी भी समस्याएँ वही हैं जो पश्चिमके समाज की। नाटकमें ऐतिहासिक गौरवका भी चित्रण किया जा रहा था। कुछ लेखक अवश्य हमारे आदर्श और नैतिकताको छोड़ कर योरपकी नैतिकताको कथाओंमें अपनाने की चेष्टा करने लगे। कहानी तथा उपन्यासोंमें अभी वह बात नहीं आयी थी। वह अभी भारतीयताकी परिधिमें घूमते रहे और यथार्थ तथा आदर्श दोनोंका सुन्दर समन्वय कर रखा था।

कुछ आलोचक भी पश्चिमसे प्रभावित होकर समीक्षा करने लगे। पश्चिमके आलोचकोंने बहुत परिश्रम तथा अध्ययन कर आलोचनाको वैज्ञानिक बनाया है। सोच-विचार कर अनेक मानदंड स्थिर किये हैं, अनेक प्रणालियाँ बनायी हैं। उनके अनुसार अध्ययन तथा समीक्षा करना ठीक था। किन्तु कुछ ऐसे आलोचक निकले जिन्होंने उन पुस्तकोंकी सूरत भी नहीं देखी और कुछ इधर-उधरसे जोड़ कर आलोचना और समीक्षा लिखने लगे। इतना ही नहीं आलोचनामें बड़े-बड़े साहित्यकारोंसे भी अपनेको आगे समझने लगे। साथ ही शुक्लजी ऐसे समालोचक भी इसी युगमें आये जिन्होंने बड़ी गंभीरता तथा मार्मिकतासे समालोचनाको सुव्यवस्थित रूप दिया और हिंदीमें इस कलाके पथ-प्रदर्शक बने।

अंग्रेजी शिक्षा और विद्वानोंकी शिथिलता तथा उपेक्षाका परिणाम यह हुआ कि हमारी भाषामें अंग्रेजी ढंगसे लोगोंने लिखना आरम्भ किया। उसी प्रकार वाक्योंको गढ़ने लगे, ज्योंका त्यों मुहावरोंका हिंदी में अनुवाद करने लगे। भाषाको सम्पन्न बनानेके लिए दूसरी भाषाके शब्द प्रयोग करने चाहिये। किन्तु प्रत्येक भाषाकी अपनी निजी चाल होती है। यदि उसका ध्यान न रहा तो सुन्दरताके स्थान पर भाषा भोंड़ी हो जाती है। पुलिसने आग खोल दी (पुलिस ओपेंड फायर); वह भाग लेता है (टेक्स पार्ट), दृष्टिकोण, आत्मविभोर इत्यादि प्रयोग होने लगे। इतना ही नहीं; अशुद्ध भाषा लिखी जाने लगी और व्याकरणकी हत्या होने लगी।

विज्ञानका अध्ययन भी बहुत होने लगा था और लोग बुद्धिवाद की ओर भी ढुलकने लगे। साहित्यकी रचना बौद्धिक स्तरसे होने लगी। कहना नहीं होगा कि इसका भी समुचित ढंगसे प्रयोग नहीं किया गया। साहित्यका रस जाता रहा। केवल बुद्धिवादको लेकर जो रचना हुई वह नीरस तो थी ही असफल भी रही।

एक और परिवर्तन हुआ। इसके पहले साहित्य एक प्रकार आमोद-प्रमोदकी वस्तु थी। राजाओं और रईसोंने कविता सुनी, वाहवाही दी। लिखनेका काम भी प्रायः वही करते थे जिनका मुख्य कार्य कुछ और था, अवकाश मिलनेपर हिन्दीकी 'सेवा' करते थे। इससे एक लाभ यह था कि रचना कृत्रिम नहीं होने पाती थी। उमंग उठनेपर लिखा जाता था और वह लेखककी प्रतिभाके अनुसार उत्कृष्ट होती थी। किन्तु रचनाका जनतासे सम्पर्क नहीं हो पाता था। अब हिन्दी हिन्दीवालोंकी चीज हो गयी। इसलिये उन्हींकी बातें लिखनेकी चेष्टा होने लगी। जनताके प्रति लोगोंकी सहानुभूति होने लगी।

रोमांटिक साहित्यका ही यह युग था। जिस प्रकार भारतेंदुके युगमें रीतिकालका साहित्य जर्जर हो गया था और साहित्यको नयी

राहमें मोड़नेकी आवश्यकता पड़ी उसी प्रकार अब बिलकुल नये विचार, नये प्रकारके साहित्यकी आवश्यकता प्रतीत हुई। सरस्वती युगमें रोमांटिकताका सूत्रपात हुआ। इस प्रकार वह पूर्णरूप से विकसित हो गयी। यह युग हिन्दीका रोमांटिक युग है और वह भी पूर्ण कला के साथ उदित।

संवत् १९७१ में यूरोपकी पहली लड़ाई आरम्भ हुई और चार वर्षोंके भीषण संहारके पश्चात् समाप्त हुई। संवत् १९९४ के लगभग दूसरा यूरोपीय महायुद्ध आरम्भ हुआ जो उससे भी विकराल था। वह संवत् २००० के लगभग समाप्त हुआ। इन पचीस वर्षोंमें संसारमें अनेक और महान परिवर्तन हुए। विचार बदले, संस्थाएँ बदलीं, आदर्श बदले और बदला सामाजिक व्यवस्थाओंका मूल्य, इन सबका साहित्यपर प्रभाव पड़ा। कहाँ यह स्वस्थ पड़ा, कहाँ अस्वस्थ, आवश्यक स्थानोंपर बतानेकी चेष्टा की जायगी। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दोनों पड़े और देशोंपर इसका प्रभाव अधिक पड़ा इसमें सन्देह नहीं। हम लड़ाईके मैदानसे दूर थे : हमपर वहाँकी छाया पड़ी।

स्वराज्य आंदोलनके जिस रूपका सूत्रपात महात्मा गांधीने किया था वह १९७८ संवत्में तीव्रतासे आरंभ हुआ। भारत एक कोनेसे दूसरे कोनेतक हिल गया। पीड़ित भारतीय जनता मनके भावोंको लेकर निर्भीकतासे मुखरित हो उठी। बहुत-सा साहित्य 'राष्ट्रीय' साहित्यका नाम लेकर सामने आने लगा। राष्ट्रीयका जो साधारण अर्थ है वह इस साहित्यमें नहीं है। इसे स्वराज्य साहित्य कहते तो अधिक अच्छा होता। फिर भी यही नाम पड़ा। जनताने जो नामकरण किया उसे मान लेना चाहिये। इस प्रकारकी अनेक रचनाएँ गद्य और पद्यमें निकलीं। वह सामयिक थीं फिर भी परिमाण अधिक था। कुछ बहुत लोकप्रिय भी हुईं। आज उनका मूल्य ऐतिहासिक है।

रत्नाकर

[सं० १९२३-१९८९]

जगन्नाथ दास रत्नाकरका जन्म काशीमें ऊँचे वैश्य घरानेमें हुआ था। ये फारसी तथा हिन्दीके अच्छे विद्वान् थे, बी० ए० पास थे। ये बहुत दिनों तक महारानी अयोध्याके प्राइवेट सेक्रेटरी थे। कलकत्ता साहित्य सम्मेलनके सभापति हुए थे। ये व्रजभाषामें कविता करते थे। इनकी भाषा बहुत ही प्रांजल, सुव्यवस्थित और शुद्ध होती थी। ये व्रजभाषाके अन्तिम महान् कवि हो गये हैं। इन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखी हैं जिनका संग्रह रत्नाकर नामसे प्रकाशित हुआ है। इनकी रचनामें ओज भी बहुत है। इनकी कविता अनुप्रास और यमकसे अलंकृत है।

आपकी एक रचना उद्धवशतक है। श्रीकृष्ण जब मथुरा चले गये थे और उनके प्रेममें लोग व्याकुल थे तब श्रीकृष्णने उद्धवको गोकुल का हाल-चाल लेनेको भेजा। यहाँ उद्धव आये और सबसे बातें हुईं, फिर आप मथुरा लौट रहे हैं। जिस कठिनाईसे आप चले और जिस अवस्थामें मथुरा लौटे उसी प्रसंगके ये छन्द हैं।

वर्णन बहुत मार्मिक, करुणरसपूर्ण है। छन्दोंमें प्रवाह है। शोकमें व्रजके पेड़-पौदे भी गोपियोंसे आत्मभावापन्न हो गये हैं। पदयोजना बड़ी मधुर है, कल्पना दुरूह नहीं है।

हरि औध

[सं० १९२२–२००३]

हरिऔधजीका जन्म आजमगढ़ जिलेके निजामाबाद कसबेमें हुआ था। इन्होंने हिंदी मिडिल पासकर नारमल परीक्षा पासकी और अध्यापकी आरंभकी। आपने घर पर संस्कृत भी पढ़ी। बादमें आप कानून-गो हो गये। पेंशन लेनेके बाद आप काशी हिंदू विश्वविद्यालयमें हिंदीके प्राध्यापक हो गये। आपका संपर्क सिक्खोंके गुरु शाहजादा बाबा सुमेरसिंहसे था। वही आपके काव्य-गुरु थे। वह भारतेंदुके समकालीन थे। "हरिऔध"जी आपका उपनाम है। आपका पूरा नाम अयोध्यासिंह उपाध्याय है। आप सनाढ्य ब्राह्मण थे, आपके पितामह सिख हो गये थे।

हरिऔधजीने आरंभमें ब्रजभाषामें रचना आरंभकी। लेकिन समयके प्रभावसे, युगकी पुकारसे आपने खड़ी बोलीमें रचना आरंभकी। आपने पहले-पहल खड़ी बोलीमें प्रबंध-काव्य 'प्रिय-प्रवास' लिखा। इसमें कृष्ण-कथाको आपने नया रूप दिया और कृष्णको लोकनायक और जनसेवकके रूपमें चित्रित किया है। यह पुस्तक महाकाव्यकी श्रेणीकी है। पहले-पहल वर्णवृत्तोंमें खड़ी बोलीमें इतना बड़ा प्रबंध-काव्य लिखा गया। खड़ी बोली होने पर भी भाषा बहुत मधुर और सरस है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई और आज तक साहित्यप्रेमी इसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। अनेक वर्णिक छंदोंका इसमें प्रयोग किया गया है।

हरिऔधजी मुहावरेदार कविता लिखनेमें भी बहुत पटु थे। आपकी रचनाएँ प्रिय-प्रवासके अतिरिक्त वैदेही वनवास, पारिजात हैं। रस-कलश ब्रजभाषाकी कविताओंका संग्रह है। इसके अतिरिक्त चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल इन्हीं मुहावरेदार कविताओंका संग्रह है।

इनकी रचना दो शैलियोंमें होती थी। विशुद्ध संस्कृतके तत्सम शब्दोंवाली जैसे प्रिय-प्रवास और चलती बोली में जैसे, चौपदे। गद्य भी यह अच्छा लिखते थे।

मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म सं० १६४३]

आपका जन्म चिरगाँव झाँसीमें हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरण भी हिन्दीके प्रेमी, कवि तथा रामभक्त थे। इनके ही प्रभावसे गुप्त जी में कविता लिखनेकी प्रेरणा उत्पन्न हुई। आपकी शिक्षा घर पर ही हुई है। घरमें अध्ययन करते करते स्वयं रचनाकार बन बैठे। अध्ययनके साथ ही साथ कविता भी लिखने लगे। मासिक 'सरस्वती' के कारण महावीर प्रसाद द्विवेदीके सम्पर्कमें आये और उनके प्रोत्साहन के कारण इनकी काव्य-प्रतिभा निखर उठी। द्विवेदीकालीन कवियोंमें गुप्तजीका स्थान सर्वोपरि है। हिन्दीको उनकी देन बहुत बड़ी है।

इस युगके आप सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं। उनकी रचनाएँ दो श्रेणियोंमें विभक्तकी जा सकती हैं। एक तो समसामयिक साहित्य और दूसरा संस्कृति मूलक रचनाएँ। वे अपने युगके प्रतिनिधि कवि हैं और जब जब साहित्यमें नयी किन्तु सुन्दर विचार-धारा आती है तो उसे ग्रहण करनेमें हिचकते नहीं। आप खड़ी बोलीके प्रथम राष्ट्रकवि भी माने जाते हैं। आपकी राष्ट्रोत्थानके लिये लिखी गयी रचनाओंका ऐतिहासिक महत्व है। भारतीयोंको 'भारत-भारती' के द्वारा अतीतके आत्म गौरवका मंत्र इन्होंने स्मरण दिलाया है। संस्कृति मूलक रचनाओंमें 'साकेत' खड़ी बोलीमें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है और लोग उसे महाकाव्य मानते हैं। 'यशोधरा' में करुण रसका सुन्दर परिपाक हुआ है। 'साकेत' पर मंगला प्रसाद पारितोषिक भी मिला है।

रचनाओंके नाम हैं—काव्य—भारत-भारती, जयद्रथ-वध, पञ्चवटी, साकेत, द्वापर, यशोधरा, नहुष, सिद्धराज, काबा-कर्बला, हिडम्बा इत्यादि। नाटक—तिलोत्तमा, चन्द्र हास, अनघ। अनुवादित—मेघनाथ वध, पलासीका युद्ध, रुबाइयात उमर खैयाम, वीरांगना। खण्ड-काव्य—किसान, रंगमें भंग, शक्ति, सैरध्री हिन्दू इत्यादि।

गुप्त जी परिष्कृत खड़ी बोलीमें रचना करते हैं। ज्यों-ज्यों उनकी काव्य-कला विकसित होती गयी त्यों-त्यों उनकी भाषा भी विकसित होती गयी है और अन्तमें आकर निखर गयी है। कहीं-कहीं भावमें जटिलता भी आ जाती है। आपकी भाषा की गति कहीं, कहीं अप्रयुक्त शब्दोंके प्रयोगके कारण रुक जाती है। गुप्त जीने प्रायः सभी आधुनिक छन्दोंमें रचनाकी है और उसमें उन्हें सफलता भी मिली है।

जयशंकर प्रसाद

[सं० १९४६-१९९४]

जयशंकर "प्रसाद" का जन्म काशीके प्रसिद्ध ताम्बूलके व्यापारी सुंघनी साहुके घरानेमें हुआ था। स्कूलमें आपकी शिक्षा कम हुई। घर पर ही आपने संस्कृत, हिन्दी तथा अंगरेजीकी शिक्षा प्राप्तकी। बाल्यावस्थासे ही आपको कविता करनेकी रुचि थी। आपने व्रजभाषामें रचनाएं आरम्भकी, किन्तु आगे खड़ी बोलीमें करने लगे। आपने भारतेन्दुके पश्चात् हिन्दीमें नाटकोंका सर्जन आरम्भ किया। आपके नाटक ऊंची श्रेणीके, भारतके अतीत गौरवको जाग्रत करनेवाले हैं। आपने उपन्यास तथा कहानियाँ भी लिखी हैं। बहुतसे गीतोंके अतिरिक्त आपने कविताकी एक सुन्दर पुस्तक 'आँसू' तथा एक प्रबन्ध काव्य 'कामायनी' लिखी है जो 'मङ्गला प्रसाद पारितोषक' से पुरस्कृत हैं। आप हिन्दी कवितामें उस शैलीके प्रवर्तक माने जाते हैं जिसे छायावाद कहते हैं।

आप इस युगके सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। इन्होंने प्राचीन भारतका इतिहास मननपूर्वक अध्ययन किया था। इन्होंने भाषाका वह स्वरूप रखा जो प्रांजल हिन्दी कही जाती है। उनके नाटकोंकी रचनाका क्रम इस प्रकार है।

(१) सज्जन—सं० १९६७; (२) करुणालय—१९६८; (३) प्रायश्चित—१९६९; (४) राज्यश्री—१९७०; (५) विशाख—१९७८; (६) अजातशत्रु—१९७९; (७) जनमेजयका नाग-यज्ञ—१९८३; (८)

कामना—१९८४; (९) चंद्रगुप्त—१९८५; (१०) स्कन्दगुप्त—१९८५; (११) एक घूँट—१९८६ (१२) ध्रुवस्वामिनी—१९९० ।

प्रसादजीके नाटकोंकी एक विशेषता यह है कि उनमें भारतीय संस्कृतिका भाव भरा हुआ है। अपने आदर्शसे वह गिरते नहीं। पुराने ऐतिहासिक नाटकोंमें जहाँ नवीनता आती है जैसे ध्रुवस्वामिनीका विवाह, उनका कहना है कि उस युगमें यह प्रथा प्रचलित थी और समाजके आचारके विरुद्ध नहीं समझी जाती थी। प्रसादजीने अपने नाटकोंमें विचित्र चमत्कार उत्पन्न किया था। पुरानी ऐतिहासिक घटनाओंको लेकर नवीन युगके पट पर नवीन भावनाओंको मिलाया है। इससे यह कोई नहीं कह सकता कि यह नाटक पुरानी लकीर पीट रहे हैं या गड़े मुर्दे उखाड़ रहे हैं। प्रसादजी के नाटकोंकी विशेषता यह है कि प्राचीन परिस्थितियाँ हैं, काव्यमय रंगीन भाषा है और भावुकता ऊपर से। प्रसादजीने इतिहासकी चलती तथा प्रसिद्ध घटनाओंको लेकर नाटक नहीं रच डाला। उन्होंने इतिहासकी वह घटनाएँ लिखी हैं जो उन्होंने निजी अध्ययनके बल पर स्थिर की थीं। उनमें मतभेद हो सकता है; किन्तु है वह उनकी अपनी खोज। ध्रुवस्वामिनीका विवाह, कालिदास-का समय, नागोंका राज्य इत्यादि उनकी अपनी वस्तु है जो इतिहासके अध्ययनके बाद उन्होंने नये नाटकके लिए चुनी।

उनके नाटकोंमें दार्शनिकता भी है। चरित्र-चित्रण भी चतुराईसे किया है। चद्रगुप्तमें चाणक्यका चरित्र बहुत ऊँचा है। और लोगों की भाँति वह षड्यंत्रकारी नहीं बनाया गया। निर्भीक, स्वाभिमानी, विद्वान, देशभक्त जो विदेशियोंके आक्रमणसे देशकी रक्षा करना चाहता है। उनके चरित्र स्वाभाविक हैं।

प्रसादजीके नाटकोंकी भाषाके सम्बन्धमें बहुधा यह कहा जाता है कि वह क्लिष्ट है। यह बात तथ्य से दूर है। वह अवश्य ही प्रेमचंद-वाली हिन्दी नहीं लिखते थे। किन्तु ऐसा न था कि साधारण लोग

उनकी भाषा न समझ सकें। यह अवश्य खटकता है कि प्रत्येक पात्र से वह उसी भाषामें बात कराते हैं। विद्वान् और साधारण सिपाही एक ही भाषा बोलता है। संवाद कहीं-कहीं गद्य-काव्य-सा हो गया है। उनके आरंभिक नाटकोंमें जो गीत हैं वह प्राचीन कालके भावोंके अनुसार नहीं। वर्तमान युगके गीत वहाँ लिखे गये हैं इसलिए वह ठीक बैठते नहीं। चंद्रगुप्तमें पच्चीस वर्षोंकी घटना दी गयी है। कई दृष्टियोंसे यह अनुचित हुआ है। कार्नेलियाको इस हिसाबसे बूढ़ी हो जाना चाहिये था। इसी प्रकार और भी पात्रोंको, जो आरंभमें युवक थे, बूढ़े हो जाना चाहिए था। काल, स्थान, तथा कर्मकी अन्वितिको यूनानी आचार्योंने नाटकके लिए आवश्यक समझा था। यह आवश्यक नहीं है कि हम भी उसे मानें; आज भी। किन्तु इतना अन्तर तो नहीं होना चाहिये। प्रसादके नाटकोंमें सामयिकता है। पात्र उनके पुराने हैं। उनकी वाणी बीसवीं शती की है।

प्रसादजीके नाटकोंमें एक कमी यह भी है कि उन्हें रंगमंच पर अभिनय करनेमें कठिनाई होती है। यद्यपि साहित्यिक नाटक भी लिखे जाते हैं और लिखे गये हैं किन्तु उन नाटकोंका कोई महत्त्व नहीं जो अभिनीत न हो सकें। संपादन करके कई नाटक उनके खेले गये हैं। थोड़ा परिवर्तन करके उनके नाटक बहुत अच्छे ढंगसे खेले जा सकते हैं।

कामना उनका भावनापूर्ण नाटक है जिनमें गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन किया गया है। वह प्रतीकात्मक है। स्कंदगुप्त उनका सबसे सफल नाटक है।

कहना नहीं होगा कि भारतेंदुके पश्चात् प्रसादजीने ही हिन्दीमें नाटक उपस्थित किये जो अपनी भाषा, अपने युग और अपनी संस्कृति के अनुकूल थे। वे सफल उपन्यासकार और कहानीकार भी थे।

सुमित्रानंदन पंत

आप हिंदीके उन कवियोंमें हैं जिन्होंने जागरूकताके साथ हिंदी काव्यका नेतृत्व किया है। आरंभमें उन्होंने छायावादी शैली अपनाकर उस युगकी प्रचलित कविता का विरोध किया। 'पल्लव', 'वीणा' और 'गुञ्जन' तक उन्होंने यही शैली अपनायी। इस शैलीमें उन्होंने भाषाको बहुत मधुर बनाया। कोमल कल्पनाएँ कवितामें लाये। प्रत्येक पद्य इनका भावुकतामय है। प्रकृतिका चित्रण सजीवताके साथ किया है। अंग्रेजी साहित्यका प्रभाव इनकी इस युगकी रचनाओंमें स्पष्ट है। किंतु आपकी रचनाएँ केवल भावुकतासे ही भरी नहीं हैं। चिंतन भी उनमें बहुत है। दार्शनिकता भी रचनाओंमें है। सुख-दुख, परिवर्तन आदि रचनाओंमें विचारोंका समावेश भी है। केवल भावना या कल्पनाका सहारा नहीं लिया गया है। भाषाको आपने माँजा है। आपने कोमलता लानेके लिए शब्दोंके व्याकरण भी निजी गढ़ लिये हैं।

आगे चलकर आप समयके साथ बदले। जनताकी चीत्कार आपके कानोंमें पड़ी। ग्राम्या जैसी पुस्तक आपने लिखी। गाँवोंमें स्त्री-पुरुषका जीवन कैसा होता है, उनकी क्या विशेषताएँ हैं तथा किसान मजदूरकी ओर आप चले। इस प्रकारकी रचनाओंकी भाषा सरल है। चित्र कहीं-कहीं उस सीमातक पहुँचे हैं जिसे लोग अश्लील कहते हैं। युगवाणीमें कविने नवयुगके पुकारकी रचनाएँ आरंभ कीं। युगवाणी तथा युगान्तकी रचनाएँ काव्यकी दृष्टिसे उस कोटिकी नहीं हैं जिस कोटिकी पहली। वह समाजका चित्र हो सकती हैं वह भी अत्युक्तिपूर्ण। ग्राम्याके पश्चात् आपने फिर अपनी बाग मोड़ी। ग्राम्या, युगवाणी तथा युगान्तरकी भाषा सरल है। कल्पनाएँ फिर भी इनमें हैं। तथा काव्यका पीछा कवि छुड़ा नहीं सका यद्यपि चेष्टा बहुत की।

प्रकृतिका चित्रण पंतजीका अनेक कवियोंकी अपेक्षा अधिक सजीव है। उसकी आत्मातक आप पहुँचते हैं। सब मिलाकर पंतजी नवयुगके उत्कृष्ट कवि हैं। इनकी कुछ रचनाएँ दी जा रही हैं।

भारतमाता

ग्रामवासिनी।
खेतोंमें फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आँचल
गंगा यमुनामें आँसू जल
मिट्टीकी प्रतिमा
उदासिनी।

×

दुखमें मन करता क्यों चिन्तन,
सुखमें जीवन दर्शन!
आज प्रौढ़ जीवन संध्यातप;
सागरकी लहरोंमें छुप् छुप्
यौवन स्मृतियाँ करतीं कँप कँप!
गर्जन करते घुमड़ घुमड़ घन,
अस्त क्षितिज पर, विद्युत द्युति से
चकित दृष्टि जाती है झप झप!
जो प्रकाशका प्राङ्गण था मन
वह छायाका आँगन।

×

तुम्हारा ही अशेष व्यापार
हमारा भ्रम मिथ्याहङ्कार

तुम्हींमें निराकार साकार ;
मृत्यु जीवन सब एकाकार

×

दुग्ध पीत अधखिली कली सी
मधुर सुरभिका अंतस्थल ,
दीप शिखा सी, स्वर्ण करोंके
इन्द्र चाप-सा मुख-मंडल ।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला (सं० १९५३)

हिंदी नवयुगके उन कवियोंमें हैं जिन्होंने काव्यको संगीतमय बना दिया है। निराला भी उन क्रान्तिकारी साहित्यकारोंमें हैं जिन्होंने पुरानी परिपाटी छोड़ दी है और जो रचनाओंमें नयापन लाये हैं। इनपर बँगला साहित्यका प्रभाव पड़ा है। बंगालमें यह रहे हैं। उस साहित्यका अध्ययन किया है। किंतु हिंदीमें जो परिवर्तन इन्होंने किया है वह मौलिक ढंगसे। (१) पहले इन्होंने कविताको संगीतमय किया। इन्होंने बहुत गीत लिखे हैं। उन गीतोंमें शब्दोंके चयनपर इन्होंने ध्यान रखा है जिससे लय और मधुरता नष्ट न होने पाये। इनके गीत इस दृष्टिसे बहुत सुन्दर हैं। (२) कवि छंदोंमें भी नवीनता लाया है। अनेक नवीन छंद इन्होंने लिखे हैं। इस नवीनतामें काव्यकी सुन्दरता नष्ट नहीं होने पायी है। (३) तुक-विहीन तथा मात्रा-विहीन रचनाएँ इन्होंने हिंदीमें आरंभ कीं किंतु इनमें तथा इस प्रकारके लिखनेवालोंमें अंतर यह है कि इनकी रचनामें लय है, गति है।

जहाँ एक ओर गीतोंमें निराला मधुर हैं, वहाँ 'रामकी शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' ऐसी रचनाओंमें बहुत ओजपूर्ण हो गये हैं। उनकी शब्दावली, भावोंका गठन अद्वितीय है। सारी रचना जोरदार है।

निरालामें भी पंतकी भाँति गुण है कि विषयके ही अनुसार भाषाका भी प्रयोग करते हैं। तुलसीदासमें भी भाषा शक्तिशाली है।

निरालाजी सांस्कृतिक कवि हैं। भारतीय संस्कृतिकी सदा अपनी रचनाओंमें इन्होंने रक्षा की है। कुछ नये युगका प्रभाव इनपर पड़ा और 'कुकुरमुत्ता' ऐसी रचना इन्होंने की हैं को पूँजीवादपर व्यंग हैं। यह रचना भी सुन्दर है। निरालाजी भाषा, भाव, विषयकी दृष्टिसे उच्चश्रेणीके कवि हैं। आरंभमें इनकी रचनाएँ छायावादी शैली की हैं। इधर इन्होंने ढंग बदल दिया। किंतु जो साहित्यिकता इनकी उन रचनाओंमें है वह इनमें नहीं। यह इस युगके प्रधान साहित्यकार हैं। कवि और कलाकार एक ही रूपमें निरालामें हम पाते हैं। इनकी रचनाएँ यह हैं—

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग, और मैं चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मैं क्रान्तिकामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति।
तुम सुरापान घन अन्धकार, मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

×

रवि हुआ अस्त; ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण शर विधृत क्षिप्र कर, वेग प्रखर
शतशैल संवरण शील, नील नभ-गर्जित-स्वर।

(राम की शक्तिपूजा)

महादेवी वर्मा भी छायावादी शैली की कवयित्री हैं। इनकी भाषामें रंगीनी है। शब्दोंसे चित्र बहुत मनोहर और मनोरम यह बनाती हैं। भाषा कोमल है किंतु गंभीरता लिये हुए। इनकी सभी रचनाओंके अंदर एक ज्वाला, एक टीस, एक पीड़ा मिलती है। यह

कहा जा सकता है कि वही-वही बात अनेक ढंगसे कही जा रही है। जैसे वही बादल सूर्यकी किरणोंके प्रभावसे विभिन्न रंगके हो जाते हैं वैसी ही इनकी कविता है। चार रचनाएँ आप पढ़ लीजिये फिर वही वेदना, वही टीस, वही ज्वाला, वही आँसू। एक ही चित्र विभिन्न रूपमें दिखायी देता है। भाषा आपकी प्रांजल है।

माखनलाल चतुर्वेदी भी छायावादी समुदायके कवि हैं। आप की भी आरम्भिक रचनाओंमें लाक्षणिकता बहुत है। इनकी भाषा बहुत रंगीन होती है। कभी-कभी भाव भाषाके भीतर छिप जाते हैं। आपके विषय प्रेम और राष्ट्रीयता हैं। शब्द बहुत सुन्दर आप चुन-कर रखते हैं। आपकी कवितामें कला नहीं है किन्तु भाव भरे रहते हैं। 'हिमकिरीटनी' आपकी रचनाओंका संग्रह है।

सुभद्रा कुमारी
[१९६१–२००५]

सुभद्रा कुमारी चौहानका जन्म प्रयागमें क्षत्रियकुलमें हुआ था। आपकी शिक्षा प्रयागमें हुई थी। आपकी रुचि आरंभसे ही साहित्य की ओर थी। सार्वजनिक कार्योंमें आपका बहुत कुछ योगदान रहा है। आपके सामाजिक विचार बहुत उदार थे। आपका विवाह जबलपुरमें हुआ वहीं आप अनेक बार जेल गयीं। वहीं आप एम. एल. ए. भी थीं। किन्तु आपने साहित्य-सृजन नहीं छोड़ा। आपको दो बार हिंदी साहित्य सम्मेलनसे सेखसरिया पुरस्कार मिल चुका है।

आपकी शैली सरल होती थी। साधारण जनता भी आपकी रचनाओंसे रस लेती थी। आप वीर-रस और वात्सल्य भावोंकी मर्मस्पर्शी रचनाएँ करती थीं। यहाँ आपने अपना क्षेत्र बनाया था। आपकी पुस्तकें मुकुल, बिखरे मोती, त्रिधारा, कादंबिनी हैं।

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

आपका जन्म रीवाँ राज्यमें नई गढ़ीमें हुआ था। आप आरम्भमें ब्रजभाषामें कविता करते थे। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीके सरस्वती के सम्पादनके समय आप खड़ी बोलीमें कविता करने लगे। आपकी कई कविताकी पुस्तकें छप चुकी हैं। आपने अनेक शैलियोंमें रचना की है। ठाकुर साहब कोमल भावनाओंके कवि हैं। प्रेम आपका मुख्य आदर्श है चाहे वह ईश्वरके प्रति हो, चाहे देशके प्रति और चाहे संसारके प्रति अथवा प्रकृतिके प्रति। आपके गीतोंमें करुणाका स्वर भी पाया जाता है। आप खड़ी बोलीमें कवित्त लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। आपकी रचनाओंके कई संग्रह निकले हैं आपने ब्रजका भी वर्णन किया है।

सियारामशरण

आप मैथिलीशरण गुप्तके अनुज हैं और वहीं चिरगाँव में रहते हैं। अपने बड़े भाई की भाँति आप भी सरल तथा सीधे स्वभाव के हैं। आप भी बहुत सुन्दर रचना करते हैं। रचनाएँ भाव तथा भाषा से पूर्ण हैं। स्वभावके ही अनुसार आपकी शैली सरल होती है। राष्ट्रीयता तथा भारतीय संस्कृतिकी व्यंजना आपकी रचनाओंमें होती है। कहानी और उपन्यास भी आप लिखते हैं।

सियाराम शरणकी रचनाओंकी भावनाएँ कोमल होती हैं। करुण और प्रेम तथा वात्सल्यके रुचिर भाव आपकी रचना में मिलते हैं। आपकी भाषा सरल होती है, क्लिष्टता बिलकुल नहीं होती। साथ ही प्रांजल होती है।

यहाँ जो कविता दी जा रही है वह कविके विशाल मनके भावको व्यक्त कर रही है। रजकण उड़कर पर्वतके पास आया है और आशा

लेकर आया है कि विराट पर्वतसे उसे कुछ प्रसाद प्राप्त होगा। पर्वत की व्यापकता और कणकी लघुता देखिये। इसीकी तुलना आत्मा और परमात्मासे कीजिये !

सियाराम शरणकी मुख्य पुस्तकें नारी, मृण्मयी, बापू तथा अनेक संग्रह हैं।

बालकृष्ण शर्मा नवीन भी छायावादी युगके कवि हैं। शैली छायावादी है किन्तु विषय प्रेम, राष्ट्रीयता है।

ये शिला खण्ड मानो अपने पापोंके फैले हैं सरूह।
या नीरसताने चिर निवासके लिये रचा है एक व्यूह।

गुरुभक्तसिंह इस युगमें प्रकृतिकी सुषमा काव्यमें चित्रण करते उतरे। आपने वनकी वंशी·ध्वनि लिखी। आपकी कविता नूरजहाँमें और भी निखरी। छायवादी भाषाके स्थानपर उन्होंने प्रतिदिनकी भाषाका प्रयोग किया।

श्यामनारायण पांडेय

इस युगके प्रबन्ध काव्यके सफल कवि हैं। आपका सबसे अधिक ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ हल्दीघाटी है, जिसमें राणाप्रताप और अकबरका युद्ध है। फिर पद्मिनीकी कथा लेकर आपने जौहर लिखा। आपकी कवितामें गति है, प्रवाह है। पंक्तिया फिसलती चलती हैं। प्रसाद गुण आपकी रचनाकी विशेषता है। किंतु व्याकरण तथा भाषाके दोष बहुत हैं। आपकी अपनी एक शैली है जो लोकप्रिय है। देखिये—

कलकल करती थी रणगंगा, अरिदलको डूब नहानेको।
तलवार वीरकी नाच उठी, चटपट उस पार लगानेको।
वैरीदलकी ललकार गिरी, वह नागिन-सी फुफकार गिरी।
था शोर मौतसे बचो बचो, तलवार गिरी, तलवार गिरी।

दिनकर

[जन्म सं० १९६५]

इधर बिहारके जिन निवोदित कवियोंने हिन्दी जगतका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है उनमें श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर'का स्थान सर्वोपरि है। आपका जन्म सीतामढ़ीमें हुआ था तथा आपने बी० ए० तक शिक्षा पायी है।

अन्तरकी पीड़ाका संयोग राष्ट्रके अतीतके साथ कर आपने अभिनव करुण किन्तु ओजपूर्ण काव्यका निर्माण किया है। प्रचार नहीं साहित्यिक स्तरपर आपने राष्ट्रके अतीतका अलख जगाया है, वर्तमान की निद्रा भंगकी है और भविष्यके लिए आह्वान किया है राष्ट्रका और विश्वका। कवि क्रांतिका अग्रदूत है।

आपकी रचनाओंका नाम है, रेणुका, हुंकार, रसवन्ती और कुरुक्षेत्र। कुरुक्षेत्र प्रबन्ध काव्य है जिसका स्थान खड़ी बोलीके प्रबन्ध काव्योंमें अत्यन्त उच्च है।

आपकी भाषा ओजपूर्ण, प्रसाद, गुण सम्पन्न खड़ी बोली है। उसमें भाव-वहनकी क्षमता है। सारल्य उसका गुण है माधुर्य उसकी आत्मा है। इस युगके ये प्रमुख कवि हैं। अब हम अन्य प्रमुख साहित्य कारोंका वर्णन करेंगे।

प्रेमचन्द १९३७–१९९०

इस युगके सबसे महान तथा सबसे सफल उपन्यासकार हुए हैं। उन्होंने उपन्यासोंमें क्रांतिकी है। उन्होंने समाजका चित्रण किया है और भारतीय समाजको राह भी दिखायी है। प्रेमचंद पहले उर्दूमें लिखते थे और कहानी लिखते थे। पीछे हिन्दीमें लिखने लगे और धीरे-धीरे उपन्यास लिखने लगे। प्रेमचंदके पहले उपन्यास विलासी

जीवनका चित्रण होता था । प्रेमचंदने जनताके मनको समझा । उसकी समस्याएँ अपने उपन्यासों में रखीं । सूक्ष्म घरेलू परिस्थितियोंसे लेकर समाजकी परिस्थिति तथा समाजकी आवश्यकताओंकी ओर उनकी दृष्टि गयी । हमारे पारिवारिक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन में जो कुछ बुराई-भलाई है उससे वह परिचित थे और उसे उन्होंने अपने उपन्यासों में रखा । इतना ही नहीं; वह इससे ऊपर उठे । मानवताकी ओर उनकी दृष्टि गयी । अपने देशकी समस्याओंको उन्होंने विश्वकी समस्याएँ बना दिया । पात्र हमारे देशके हैं किंतु उनकी दुर्बलताएँ अथवा उनका बल ऐसा दिखाया गया है जो सभी जगह मिलता है । अपने पात्रोंके साथ उन्हें सहानुभूति थी । वेश्याओं, विधवाओं, भिखमंगों, किसानोंके जीवनको उन्होंने आइनेके समान हमारे सामने रखा । समाजकी आंखें उस ओर फेरीं । उनका पहला उपन्यास 'सेवा-सदन' सन् १९१८ ईस्वीमें प्रकाशित हुआ । उसमें दहेजकी प्रथाका जो हिन्दू-समाजमें परिणाम होता है वह दिखाया गया है । इसकी कथा है कि कुपात्रके साथ सुमनका विवाह हो जाता है और वह वेश्या बन जाती है । इसमें उन्होंने दिखाया कि समाज कितना ढोंगी है, विलासप्रिय है उन्होंने वेश्या और वेश्यालयका वर्णन किया है किन्तु कहीं बीभत्सता नहीं आने पायी है । उन्होंने बताया कि हमारी कुत्सित भावनाओं तथा कुविचारोंने इनको जन्म दिया है । सुमनकी बहन शांताके रूपमें प्रेमचंदने नारीका वह पवित्र और आदर्श स्वरूप दिखाया है जो भारतीय नारीका गौरव है । सेवा-सदनकी स्थापना में प्रेमचंदने वेश्याओंकी समस्या हल करनेकी चेष्टा की है । माना कि वह केवल आदर्श है किंतु भारतीयताके अनुकूल है । सेवा-सदनमें समाजका वास्तविक चित्रण है । इसके पश्चात् इन्होंने 'वरदान' लिखा, फिर 'प्रेमाश्रम' । 'प्रेमाश्रम'में किसानोंकी दुरवस्था, जमींदारों तथा

पुलिसके अत्याचार, कचहरी आदिकी धाँधलीका चित्रण है। इस उपन्यासमें उन्होंने समाजवाद समाजकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए चुना। इस उपन्यासमें प्रेमचन्द प्रचारक बन बैठे हैं इसलिए इसमें कृत्रिमता आ गयी है। संवत् १९८१ वि० में उन्होंने 'रंग-भूमि' उपन्यास दो भागों में प्रकाशित किया। उस समय सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ हो चुका था। वह सब इस उपन्यासमें आया। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई आदि सब धर्मोंके लोग इनके पात्र चुने गये हैं। इसमें गांधीवादकी महत्ता दिखायी गयी है और उसकी शक्ति दिखायी गयी है निर्बलोंका अमोघ अस्त्र। इसमें एक साथ मनोविज्ञान और जीवन-दर्शन दिखायी देता है। सूरदासके चरित्रमें प्रेमचंदने महात्मा गांधी को व्यक्त करनेकी चेष्टा की है। इसके पश्चात् उन्होंने 'काया-कल्प', 'निर्मला', और 'प्रतिज्ञा' उपन्यास लिखे। इसके बाद आया 'गबन'। यह भी समाजके विचित्र पहलुओंको सामने रखता है। इसमें उन्होंने नगर तथा ग्रामके समाज तथा उसके गुण-दोष दिखाये हैं। चरित्र भी आदर्श हैं। फिर 'कर्मभूमि' आया। इसमें भी किसानों तथा मजदूरोंका तथा धनी वर्गका संघर्ष दिखाया गया है। दोनों की वास्तविक परिस्थितिका चित्रण है। उनका अंतिम उपन्यास 'गोदान' है। वह वर्तमानका निष्पक्ष चित्र है। किसान होरीका चित्र बहुत निर्मल बहुत उज्ज्वल दिखाया गया है। भारतीय किसानका वह प्रतीक हैं। गोदानमें ग्राम तथा नगरके जीवनको एकमें गूँथनेका प्रयत्न किया गया है। ग्राम-जीवनका स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। चित्र करुणासे पूर्ण है। इसमें पात्रोंकी संख्या कम है। और भारतीय किसान की असहाय स्थिति इसमें दिखायी गयी है। इस उपन्यासमें पश्चिमी साम्यवाद की भी झलक है।

उनकी कृतियोंसे जान पड़ता है कि प्रेमचन्दमें भारतीय संस्कृति तथा भारतीय आदर्शोंके प्रति बड़ी श्रद्धा तथा बहुत प्रेम था। उसकी

सदा विजय उन्होंने दिखायी है। समाजका जो अंश सड़ा था, जहाँ खोखलापन था उसकी बुराई उन्होंने दिखायी है। इस रोग की दवा भारतीय संस्कृतिमें ही इन्होंने बतायी है। प्रेमचन्दके पात्र सब सजीव हैं। उनका वस्तु-विन्यास मनोरंजक तथा हमारे समाजके अनुकूल है किन्तु दकियानूसी नहीं। वह आदर्शवाद तथा यथार्थवाद का समन्वय करने वाले हैं।

रामचन्द्र शुक्ल

आपने हिंदीमें विचारात्मक निबंध लिखकर बहुत बड़ी कमी पूरी की। उन्होंने बड़ी गम्भीरतासे अनेक विचारोंपर निबन्ध लिखे। क्रोध, लोभ, शृंगार, करुणा आदि अनेक विकारों पर उन्होंने निबन्ध लिखे हैं जो 'चिंतामणि'में दो भागोंमें संगृहीत है। विचार बीथी भी उनके लेखोंका संग्रह है। उनके लेखोंमें विशद विवेचना की गयी है, विचारोंको बड़े तर्कके साथ रखा गया है। उनकी भाषा संस्कृतके तत्सम शब्दोंसे युक्त है। किन्तु जहाँ भाव स्पष्ट करना हुआ है फारसी या अंग्रेजी शब्दों का भी उन्होंने व्यवहार किया है। शुक्ल जी बेकार के वाक्य नहीं लिखते। इसीलिये गम्भीरता बढ़ जाती है। विचार बराबर रहते हैं। ऐसा नहीं है कि आप कोई वाक्य निकाल दें। इतना होने पर भी अधिक स्थानोंमें भाषा दुरूह नहीं होने पायी है। कोई-कोई स्थल तो ऐसा मिलेगा जिसे समझने के लिये एक से अधिक बार पढ़नेकी आवश्यकता पड़े। भाषा व्याकरण-सम्मत और शुद्ध होती है। उनके लेख दार्शनिकतासे पूर्ण हैं। भाव के अनुसार ही भाषा चलती है।

आपका हिन्दीमें आलोचकके रूपमें प्रकट होना हिन्दी साहित्यके लिए एक घटना है। उन्होंने इस क्षेत्रमें आते ही एक सीमा बना दी, जहाँ तक कोई भी हिन्दीका आलोचक अभी तक पहुँच नहीं पाया।

भारतीय आदर्शोंसे वे अनुप्राणित थे किन्तु रूढ़िगत परम्पराके अंध भक्त नहीं। उनका हृदय ऐसे तन्तुओंसे निर्मित था जिसमें भारतीय आदर्शोंके प्रति ममता थी किन्तु उसमें किसी अच्छे विदेशी आदर्शकी प्रतिष्ठा भारतीय रूपमें करनेमें हिचक नहीं।

उनके पूर्व आलोचनाकी जो धारा हिन्दीमें वह रही थी उसमें गंभीर अध्ययन, मनन, चिन्तनका अभाव था। यदि तह तक पहुँचनेका प्रयास भी किया जाता था तो आँखोंमें विशेष प्रकारकी ऐनक लगा कर। किन्तु शुक्लजीने अपने गम्भीर अध्ययन द्वारा आलोचनाको जो नयी मोड़ दी उससे हिन्दी जगतकी आँखें खुल गयीं।

जीवनके प्रत्येक पहलूमें समन्वयका मूल्य होता है साहित्य उसका अपवाद नहीं। आचार्य शुक्लजीने आलोचनाकी निगमन एवं आगमन शैलीमें समन्वय स्थापित कर हिन्दी वालोंके सम्मुख नया मार्ग प्रस्तुत किया। उन्होंने पाश्चात्य एवं पूर्वके आलोचना सिद्धान्तोंके माध्यमसे हिन्दीके लिए संतुलित मार्ग प्रस्तुत किया जिसका आधार भारतीय था।

उन्होंने इस क्षेत्रमें जो कार्य किया है वह अतुलनीय है। हिंन्दी साहित्यका इतिहास; गोस्वामी तुलसीदास, जायसीकी भूमिका, सूरदास आदि उनके उत्कृष्ट आलोचना ग्रंथ हैं जिनकी तुलनाके ग्रंथ अब भी नहीं हैं।

आलोचनामें भी लोगों पर मधुर व्यंग उनकेही सामर्थ्यकी बात थी। अनेक लोगों पर व्यंगमें वह कुछ लिख देते थे जो समझने वालों के लिए पहेली बन जाती थी। उनकी भाषामें प्रवाह है तथा भावनाको व्यक्त करने की सामर्थ्य। शुक्लजीकी आलोचनामें एक कमी अवश्य पायी जाती है कि नवयुगके कवियोंके प्रति वह न्याय नहीं कर सके। निराला, पंत, प्रसाद आदि की कृतियोंके सम्बन्धमें उस व्यापक दृष्टि-

का प्रयोग नहीं किया गया जो भारतेंदु तकके कवियों की रचनाओंमें किया गया। नये विचारोंके साथ शुक्लजी अपनेको ला नहीं सके। भारतेंदु तककी उनकी आलोचना नपीतुली है।

वर्तमान

दूसरी लड़ाईके पश्चात् संसारका कायापलट हो गया। सबकी दृष्टि बदल गयी। पुरानी वस्तुओं, परम्पराओंसे युवकोंका विश्वास उठ गया। पूँजीवादके प्रति स्पष्ट विद्रोह होने लगा। जनता जागी। कुचली भावना जो अभी तक कराह रही थी, करवट बदलने लगी। यही बात साहित्यमें भी आ गयी। कवितामें छंदका बंधन, भाषाका बंधन नहीं रह गया। काव्यके विषय रोटी तक सीमित हो गये। और कहीं-कहीं बाँध तोड़ कर बहुत वीभत्स रूपसे इनकी व्यंजना होने लगी। कवितामें भी बुद्धितत्त्वकी प्रधानता हो गयी। मानवता तथा अंतर्राष्ट्रीयता ध्येय हुई।

कहना नहीं होगा कि यह सब विदेशी साहित्यकारों तथा राजनीतिक विचारधाराओंका प्रभाव है। साहित्य इस युगका प्रयोगात्मक है। उसमें कितना टिकाऊपन है नहीं कहा जा सकता। इस प्रकारका जो साहित्य रचा जा रहा है उसमें स्थायित्व नहीं जान पड़ता। वह प्रचारात्मक जान पड़ता है।

जहाँ तक स्वस्थ प्रगतिशील विचारोंका सम्बन्ध है सबको उनका स्वागत करना चाहिए। साम्यवाद, पूँजीवादका विरोध, दरिद्रता, यांत्रिक जीवनके दुःख, मानवता आदि विषयोंसे किसीको विरोध नहीं हो सकता। छंदकी नवीनता, और उसमें परिवर्तनसे भी किसीको भड़कना नहीं चाहिये। किंतु जो रचना हो वह साहित्यकी मर्यादाके भीतर आनी चाहिये। रूढ़िवादके स्थान पर वह नवीनता भी भयंकर

है जो विषैली हो। प्रचारके लिए जो लिखा जाय वह साहित्यमें न लाया जाय। दूसरी बात शिष्टताकी सीमा है। इससे बाहर जो साहित्य जाता है वह कभी स्थायी हो नहीं सकता।

छायावादके विरोधमें प्रगतिशील रचनाएँ हैं। उसमें लोग अनंत में उड़ते थे, इसमें लोग धरती पर कीचड़में सनते हैं। दोनों वास्तविकतासे दूर हैं।
